प्रकाशक—
श्री स्वामी अचलराम
अचलाश्रम,
जोधपुर (मारवाड़)

बालादपि गृहीतव्यं युक्त मुक्तं मनीषिभिः।
रवेर विषये किं न प्रदीपस्य प्रकाशनम् ॥

पण्डितों को उचित है कि बालक से भी यथार्थ कहा हुआ ग्रहण करे क्योंकि जहाँ सूर्य्य का प्रकाश नहीं पहुँचता वहाँ पर क्या दीपक का प्रकाश, काम नहीं देता है।

मुद्रक—
सत्यव्रत शर्म्मा
शान्ति प्रेस, आगरा।

प्रार्थना

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामासपूर्वं सनोबुद्ध्या शुभयासंयुनक्तु ॥
समानीव आकूतिः समाना हृदयानिनः ।
समानमस्तु नो मनो यथा नः सु सहासति ॥

भावार्थः—जो देवों का प्रभु और उत्पत्तिकर्त्ता है, सारे संसार का पालक तथा संहारक है, जिसने प्रथम हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया, वह परमात्मा हमको शुभ बुद्धि प्रदान करे।

हम सब समुचित सम हृदय हों, समान मन के हों और सब मिल कर उत्साह और दृढ़ता के साथ धर्म वृद्धि और लोक हित के कार्य्यों में सदा प्रवृत्त हों।

समर्पण

तपस्विनो दान परा यशस्विनो,
मनस्विनो मंत्र विदः सुमंगलाः ।
क्षेमं न विंदंति विना यदर्पणं,
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥

तप करने वाले, दान देने वाले, यश चाहने वाले, योगाभ्यास करने वाले, मंत्रवेत्ता और सदाचारी ये सव ही अपने २ कर्म जिनको "समर्पण" किये विना मोक्ष सुख को नहीं पाते हैं, तिन अति प्रभावशाली परमात्मा को मेरा वारम्वार प्रणाम है । और यह पुस्तक उनके चरणारविंदों में समर्पित है ।

☞ विशेष-विज्ञापन ☜

प्रथम पुस्तक धोखे से खोई जाने के कारण यह पुस्तक बड़े परिश्रम से दुबारा लिख कर स्वामीजी ने छपवाई है। प्रथम पुस्तक से इस पुस्तक में हिन्दू धर्म प्रचार और अछूतोद्धार आदि प्रकरण अंत के और भूमिका के शिक्षा आदि प्रकरण इस में विशेष हैं। शेष-मूल में और भाषा में (प्रश्नोत्तर) दोनों पुस्तकों में क्रम से एक समान हैं। केवल नाम मात्र परिवर्तन किया गया है। प्रथम पुस्तक का नाम सनातन धर्म-रहस्य रखा गया था और इस पुस्तक का नाम "हिन्दू धर्म रहस्य" रखा गया है, सिर्फ इतना ही पूर्वोत्तर पुस्तक में भेद है और सब प्रकरण एक से हैं। यह विज्ञापन इस लिये दिया है कि—

प्रथम पुस्तक हस्तलिखित तथा छपी हुई, यदि किसी पाठक के दृष्टिगोचर हो जाय तो कृपया हमें उसकी फौरन इत्तला करें क्योंकि प्रथम पुस्तक छपा कर देने का धोखा देकर लखनऊ निवासी 'मिश्र हरिलाल' हमसे ले भगा है।

अतः हम उसकी तथा पुस्तक की तलाश में हैं। इस बारे में समाचार पत्रों में नीचे लिखा विज्ञापन भी दे चुके हैं।

(सर्व भारतीय प्रेस-मैनेजरों को सूचना)

हमारे गुरु स्वामी अचलराम जी महाराज विरचित सनातन धर्म रहस्य प्रश्नोतरावली नामक पुस्तक, नाप ७×८॥ इंच पृष्ट २६३ सुफेद कागज पर हस्तलिखित कापी जिसमें धर्म के सर्व-अङ्ग प्रत्यङ्ग (प्रश्नोत्तर) हिन्दी भाषा में और फुट नोट संस्कृत में (शास्त्रों के प्रमाण) लिखे हुए हैं। उक्त कापी और ८०) रुपया

पेशगी बम्बई "ब्रिटिश इंडिया प्रेस में" छापने के लिये, उक्त प्रेस का एजेंट मिश्र हरिलाल हमसे डेढ़ महीने का वादा करके लेगया, जिसका अभी तक पता नहीं है, प्रेस अपना एजेण्ट मंजूर करता है, पर कापी और रुपयों का जिम्मेवार नहीं होता है और न इस एजेण्ट का पता बतलाता है।

तात्पर्य—उपरोक्त कापी असली नाम से तथा ग्रन्थ और ग्रन्थ-कर्त्ता का नाम परिवर्त्तन करके यदि किसी प्रेस में छपाने को कोई ले आवे तो स्वामी जी की आज्ञा के विना उसे न छापें। और मिश्र हरिलाल का तथा पुस्तक का जो पता लगाएगा उसे हम ५०) रुपया इनाम देवेंगे। हमारा पता:—

बाबू नेनूराम, सुपरिण्टेण्डेण्ट,

फ़रासख़ाना, राज मारवाड़, जोधपुर।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।

हिन्दू धर्म प्रचार के लिये

१००० पुस्तक पढ़े लिखे सुपात्रों को वितरण की जायँगी, खास कर यह पुस्तकें हरिद्वार कुम्भ के मेले पर बांटी जायँगी कुछ राष्ट्रीय पाठशाला और धर्म संस्थाओं को दी जायँगी ।

यह पुस्तक दान करने वालों को तथा बेचने वाले बुक्सेलरों को निम्नलिखित कमीशन दिया जायगा।

कमीशन के नियम।

६—पुस्तक एक साथ मंगाने वाले को डाक खर्च माफ़।

१२—पुस्तक से २५ तक एक साथ मंगाने वाले को २०) रुपया सैकड़ा कमीशन दिया जायगा, डाक खर्च तथा रेल खर्च मंगाने वाले को लगेगा।

५०—पुस्तक से ५०० तक एक साथ मंगाने वाले को २५) रुपया सैकड़ा कमीशन दिया जायगा, डाक खर्च तथा रेल खर्च मंगाने वाले को लगेगा।

पुस्तक मिलने के पते:—

श्री अचल आश्रम,
महामन्दिर के पास,
मु० जोधपुर (मारवाड़)

निवेदन

दूसरे प्रेसों की अपेक्षा "शान्ति प्रेस आगरा" ने मुझे यह पुस्तक शुद्ध सुन्दर तथा समय पर छाप कर दे दी, इसके लिये शान्ति प्रेस आगरा के अध्यक्ष सत्यव्रत शर्म्मा को धन्यवाद !

मैं जानता हूँ कि शर्माजी ने पुस्तक सावधानी से छापी है, परन्तु फिर भी भूल से कहीं पर स्वर, व्यञ्जन, बिन्दु रेफ़ादि की त्रुटि रह गई हो, उसको पण्डित लोग शोध लेवें क्योंकि लिखते, छपते समय बहुधा कुछ न कुछ छूट ही जाता है।

जोधपुर
फागुन शुदि २
सं० १९८३

विनीत—
स्वा० अचलराम

विषय-सूची

भूमिका

मूल-ग्रन्थ

साधारण धर्म पाद

दान धर्म ४–७

तप धर्म ७-१०

कर्म यज्ञ ११-२०

उपासना यज्ञ २१-४६

भक्तयुक्त उपासना

योगोक्त उपासना ४१-४६

ज्ञान यज्ञ ५०-६४

विशेष धर्म पाद

संन्यासाश्रम ८७-९३

नारी धर्म ९३-१०५

आपद्धर्म पाद ।

भक्ष्याभक्ष्य का विचार १०९-१२४

आर्थिक दृष्टि से मांस का खंडन ११९-१२४

गोरक्षा १२४-१२९

उपसंहार।

हिन्दू धर्मरहस्य

स्वामी–अचलरामजी

kshmi Art, Bombay, 8

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

भूमिका

उपोद्घात

वक्तव्य अर्थ को मन में रख कर उसकी संगति के लिये अन्य अर्थ के कथन को उपोद्घात कहते हैं। तात्पर्य—यह शास्त्र जैसा और जिस वास्ते लिखा गया है इत्यादि उपोद्घात अर्थ पढ़े सुने विना, इस पुस्तक का अभिप्राय समझ में नहीं आ सकता। जैसे किसी वस्तु का नक़शा या चित्र अवलोकन किये विना, उसका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। अस्तु! वैसे ही ग्रंथ की भूमिका के पढ़े विना, उसका सर्वाङ्गीण तात्पर्य समझ में नहीं आसकता। अतः पाठकगणों से निवेदन है कि—प्रथम भूमिका आद्योपान्त पढ़ कर तत्पश्चात् ग्रन्थ का पाठारम्भ करें। इस ग्रन्थ की भूमिका एक अपूर्व शिक्षाप्रद है। इस में मनुष्य जाति की पूर्णोन्नति के सर्वोपाय कूट-कूट कर भरे हैं अर्थात् इसमें शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति का भावपूर्ण चित्र खींचा गया है। यह भूमिका मूल ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषयों से निराली और प्राचीन आर्य्य-शिक्षा की एक अद्वितीय पुस्तक रूप है इसलिये प्रथम इसे ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये।

ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय के विवेचन में जिन बातों का कथन न हो सकता हो, उन बातों को प्रकाशित करने के लिये भूमिका ही शेष स्थान है । अतः उन्हीं बातों का उल्लेख किया जाता है ।

पुस्तक प्रवृत्ति का हेतु

त्येक मनुष्य अपने उद्देश्य को सन्मुख रख कर पश्चात् किसी कार्य्य में प्रवृत्त होता है । "प्रयोजन शून्य मन्द भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता ।" इस न्याय* से यह पुस्तक प्रकाशित करने का मेरा क्या अभिप्राय है । प्रथम इस बात को प्रगट कर देना मैं उचित समझता हूं । मेरा अभिप्राय यह नहीं कि इस पुस्तक की रचना से संसार में मेरा यश (कीर्त्ति) फैले अथवा विद्वानों की गणना में मेरा भी नाम लिखा जाय । किन्तु मंदमति–बालकों से लेकर युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, समस्त हिन्दू सन्तान, अपने धर्म का गौरव जान कर सब लोग धर्मज्ञ हों, इस उद्देश को लेकर यह पुस्तक रची गई है । अब प्रश्न उठता है कि–क्या तुमने सब को

---

* प्रयोजनमनुद्देश्य मंदोऽपि न प्रवर्त्तते ।

धर्म से अनभिज्ञ समझ कर पुस्तक रची है ? इस का उत्तर यह है कि २४ करोड़ हिन्दुओं में इने गिने मनुष्य ही शास्त्रवेत्ता तथा धर्मज्ञ हैं। प्रायः अधिकांश साधारण जनता शास्त्रवित् न होने के कारण, धर्म से अनभिज्ञ है। अतः उसके लिये यह शास्त्र रचा गया है। पुनः यह प्रश्न होता है कि—इस पुस्तक के पहले कोई धार्मिक ग्रन्थ नहीं है, जिससे तुमने इस पुस्तक को रचा है।

इसका उत्तर यह है कि—यद्यपि आर्य्य जाति में धार्मिक ग्रन्थों का अभाव नहीं है। आर्य्य साहित्य भण्डार में सहस्रों ग्रंथ अर्थात् चार हजार पांच सौ अठहत्तर आर्ष ग्रंथ विद्यमान हैं जिनका विवरण इस पुस्तक के अन्त में भी कुछ दिया गया है। इन्हीं आर्ष ग्रंथों से हिन्दू धर्म का रहस्य जाना जाता हैं। परन्तु ये ग्रंथ आर्य्य भाषा में होने के कारण, सर्व साधारण मनुष्य उन्हें पढ़ नहीं सकते। और कई एक इनमें भाषा भाष्य के भी ग्रन्थ हैं। तथापि वह भाषा भाष्य भी विस्तृत होने के कारण उनके गम्भीर आशयों को साधारण मनुष्य समझ नहीं सकते और प्रायः हिन्दी भाषा के आधुनिक ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें धर्म के सर्व अंग उपाङ्ग पूर्ण तथा शृंखला बद्ध नहीं इसलिये, उनसे भी धर्म का पूर्ण बोध नहीं हो सकता।

अतः इस समय हिन्दू जनता के लिये एक ऐसे धार्मिक ग्रंथ की आवश्यकता है कि, जिसमें "सार्वभौम सनातनधर्म" के सर्व अङ्ग प्रत्यङ्ग और उपाङ्ग पूर्ण—शृंखला बद्ध हों और वे सरल हिन्दी भाषा में तथा प्रश्नोत्तर रूप में हों, जिसे पढ़ कर प्रत्येक मनुष्य "विराट्—हिन्दू धर्म" का रहस्य जान कर अभ्युदय

और निःश्रेयस को प्राप्त करे। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर तथा ऐसे ग्रंथ की अत्यन्त आवश्यकता देख कर, मानव जाति के हितार्थ, सर्व वेदादि शास्त्रों का सारभूत यह शास्त्र निर्माण किय गया है।

प्राचीन शिक्षा-आदर्श

पुस्तक प्रवृत्ति का हेतु वतला कर अव प्राचीन शिक्षा प्रणाली पर कुछ विवेचना करना मैं आवश्यक समझता हूं। "वर्त्तमान में—हमारी शिक्षा का उद्देश्य केवल उदर निमित्त होरहा है। हम लोग अपनी प्राचीन शिक्षा पद्धति को भूल गये हैं, इसी कारण से आज हमारी धार्मिक, सामाजिक और नैतिक तथा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अवनति हो रही है अर्थात् इस समय सव तरह से हमारा अधःप तन और ह्रास होता जा रहा है। अतः हमें अपनी प्राचीन शिक्षा प्रणाली का अनुकरण करना चाहिये, नहीं तो हमारे लिये भविष्य वहुत अन्धकार मय होगा।

"किसी देश अथवा जाति की उन्नति का मूल कारण क्या है? तो यही कहना होगा कि उसके वालकों की शिक्षा प्रणाली

यदि किसी देश वा जाति की धार्मिक और सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति देखनी हो तो उसकी शिक्षा प्रणाली का निरीक्षण करना चाहिये।"

विद्वानों का कहना है कि "बालकों को जैसे सांचे में ढाला जायगा, समस्त जाति तथा देश भी उसी सांचे में ढलेगा। बालक ही जाति और देश के भविष्य हैं, बालकों का जैसा चरित्र गठन होगा वैसा ही जाति और देश का भविष्य भी गठित होगा।"

अतएव प्रत्येक जाति का कर्त्तव्य है कि-अपने बालकों के चरित्र गठन पर विशेष ध्यान दे। चरित्र के लिये सब से बढ़ कर आवश्यकता है, धार्मिक शिक्षा की।

बड़े शोक की बात है कि-हिन्दू जाति के बालकों को आज कल धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती। मुसलमान और ईसाई बालक मदरसे अथवा स्कूल में जब जाते हैं, तब उन्हें सब से पहले धार्मिक शिक्षा शुरू कराई जाती है। पर हिन्दू बालकों को स्कूल में प्रवेश होते ही, उन्हें कुत्ते, बिल्ली आदि जानवरों की कथा सब से पहले पढ़ाई जाती है। और वे 'लोमड़ी' 'रीछ' 'बंदर' 'हाथी' 'घोड़े' 'गधे' का पाठ अभ्यस्त करते हैं। उन्हें धर्म शिक्षा तो दूर रही पर धार्मिक ग्रन्थों का दर्शन तक भी नहीं कराया जाता।

हमारे बालक-भक्त ध्रुव, प्रह्लाद की कथा तथा वीर बालक अभिमन्यु और लव कुश की कथा का स्वप्न भी नहीं देख पाते। यह कितना बड़ा प्रमाद और अपमान का विषय है, यही हिन्दू जाति के घोर पतन और भीषण ह्रास का कारण है।

"क्या हिन्दू जाति के हितैपियों ने वर्त्तमान बालकों की शिक्षा पद्धति पर ध्यान देना उचित समझा है ? यदि समझा है तो आर्य्य शिक्षा का उद्देश्य क्या है, यह नहीं कि—केवल धनोपार्जन के लिये व्यवहारिक शिक्षा ही बालकों को पर्याप्त हो। किन्तु आर्य्य शिक्षा का उद्देश्य यह है कि:—

"धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः यो ह्येक सक्ता स नरोजघन्यः ॥
द्वयोस्तु दाक्ष्यं प्रवदन्ति मध्यं स उत्तमो यो निरतास्त्रिवर्गे ॥
(सुनीति०)

धर्म, अर्थ और काम ये तीनों बराबर प्राप्त करने योग्य हैं, जो इनमें से किसी एक में लगा रहता है वह नीच (अधम) है, जो दो में चतुर है वह मध्यम कहा जाता है, उत्तम तो वही है जो धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष को भी प्राप्त करे ।

"अन्य शब्दों में यह कह सकते हैं कि—मनुष्य जाति की पूर्णोन्नति के तीन अङ्ग हैं—यथा:—शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक इन त्रिविध अङ्गों की उन्नति करना, आर्य्य शिक्षा का परमोद्देश्य है ।

शारीरिक-उन्नति का हेतु

युर्वेद का सिद्धान्त है कि "धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूल मुत्तमम्।" अर्थात् धर्म, अर्थ, काम मोक्ष चारों पुरुषार्थों का मूल कारण आरोग्यता है और आरोग्यता का मूल कारण कसरत और ब्रह्मचर्य्य है।

अतएव बालकों की स्वास्थ्य रक्षा के लिये व्यायाम और ब्रह्मचर्य्य की शिक्षा करना आर्य्यों का पहला कर्त्तव्य है। व्यायाम के विषय में सुश्रुत में लिखा है; उसका सारांश इस प्रकार है:—

शरीरायासजननं कर्म व्यायाम संज्ञितम्।
तत्कृत्वा तु सुखं देहं विमृद्नीयात् समंततः ॥१॥
शरीरोपचयः कान्ति र्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा ॥२॥
श्रम क्लमपिपासोष्ण शीता दीनां सहिष्णुता।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते ॥३॥
न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित् स्थौल्यापकर्षणम्।
न च व्यायामिनं मर्त्यं मर्दयन्त्यरयो भयात् ॥४॥

न चैनं सहसाक्रम्य जरा समधि रोहति ।
स्थिरी भवति मांसञ्च व्यायामाभिरतस्य च ॥५॥

व्यायाम क्षुण्ण गात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्रमृगा इव ॥६॥

वयोरूपं गुणैं हीन मपिं कुर्यात्सुदर्शनम् ।
व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपि भोजनम् ॥७॥

विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषं परिपच्यते ।
व्यायामो हि सदा पथ्यो बलिनां स्निग्ध भोजिनाम् ॥८॥

स च शीते वसन्ते च तेषां पथ्यतमः स्मृतः ।
सर्वेष्वृतुष्वहरहः पुम्भिरात्म हितैषिभिः ॥९॥

बलस्यार्धेन कर्तव्यो व्यायामो हन्त्यतोऽन्यथा ।
हृदि स्थानस्थितो वायुर्यदा वक्त्रं प्रपद्यते ॥१०॥

व्यायामं कुर्वतो जन्तो स्तद्बलार्धस्य लक्षणम् ।
वयोबल शरीराणि देशकाला शनानि च ॥११॥
समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाम मन्यथा रोगमाप्नुयात् ॥

परिश्रम जन्य कार्य का नाम व्यायाम है अर्थात्—फुटवाल, टेनिस, क्रिकिट, हाकी, तैरना, दौड़ना और पोलो खेलना इत्यादि शरीरजन्य परिश्रम का नाम व्यायाम है। ये सब तन्दुरुस्ती के लिये लाभदायक हैं परन्तु यहां पर—दंड, बैठक, मुग्दर फेरना, कुश्ती लड़ना, लकड़ी चलाना ही व्यायाम समझना चाहिये। व्यायाम

करके चारों तरफ से शरीर में मालिस करना चाहिये । व्यायाम से शरीर की वृद्धि; शोभा और अङ्गों में फुर्ती तथा अग्नि का दीप्त होना, निरालस्यता, दृढ़ता, सीधापन (यथातथ्य अंगों का विकाश) होता है । थकावट, ग्लानि, प्यास, सर्दी, गर्मी की सहनशीलता, एवं व्यायाम से स्वास्थ्य को अत्यन्त लाभ होता है । मोटेपन को दूर करने के लिये इसके समान अन्य उपाय नहीं है, व्यायाम करने वाले पुरुष पर भय से शत्रु लोग आक्रमण नहीं करते हैं । व्यायाम करने वाले को बुढ़ापा शीघ्र नहीं आता, क्योंकि इससे मांस पुष्ट होकर स्थिर हो जाता है । व्यायाम करने वाले के पास रोग ऐसे नहीं आते जैसे सिंह के पास मृग नहीं जाते ।

व्यायाम से अवस्था, रूप और गुणों से हीन पुरुष की भी आकृति सुन्दर हो जाती है । पथ्य और कुपथ्य (चिकने, गरिष्ठ) भोजन को भी व्यायाम निर्दोष पचाता है, इत्यादि व्यायाम के फल आयुर्वेद में कथन किये हैं ।

व्यायाम शीत और वसन्त ऋतु में विशेष लाभदायक है परन्तु अपना भला चाहने वाले पुरुषों को सब ऋतुओं में प्रति-दिन कसरत करनी चाहिये अपनी शक्ति से आधी कसरत करनी चाहिये । अन्यथा रोग उत्पन्न करती है अर्थात् अधिक करने से हानि होती है । जब तक फेंफड़े की हवा मुँह में न आने लगे तब तक ही कसरत करनी चाहिये ।

प्राचीन काल में मल्ल युद्ध और गदा युद्ध (लकड़ी आदि चलाना) सर्व आर्य्यों को अभिमत था, जैसे कि—श्रीमद्भागवत में कृष्ण और बलराम का मुष्टिक चाणूरादि से मल्ल युद्ध करना तथा

महाभारत में भीम और जरासिन्धु का मल्ल युद्ध और गदा युद्ध करना ही इसके उत्कट प्रमाण हैं ।

इसी प्रकार ब्रह्मचर्य के विषय में कहा है कि:—

ब्रह्मचर्यं परो धर्मः स चापि नियतस्त्वयि ।
यस्मात्तस्मादहं पार्थ ! रणेऽस्मिन् विजितस्त्वया ॥

एक गन्धर्व युद्ध में परास्त होकर अर्जुन से कहने लगा कि हे पार्थ ! यह ब्रह्मचर्य ही उत्कृष्ट धर्म है कि जिसके प्रताप से तुमने मुझ को परास्त किया है, इस कारण तुमने विजय पाई यह ब्रह्मचर्य का फल है । सारांश यह है कि व्यायाम और ब्रह्मचर्य ही से हमारे पूर्वज दीर्घायु, स्वास्थ्य, बलवान् और महापराक्रमी हुए हैं । दुर्भाग्यवश हम लोग अपने पूर्वजों का मार्ग भूल गये इसी कारण आज हम दुर्बल, अल्पायु और अनेक रोगों के शिकार हो रहे हैं । अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपनी भावी सन्तान को आरोग्य दीर्घायु और सबल बनाने के लिये, उन्हें सबसे पहिले व्यायाम और ब्रह्मचर्य की महत्ता का उपदेश करें और साथ ही सदाचार का भी परिचय कराना चाहिये जिससे कि बालक दुराचार से बच कर सच्चरित्रवान् हों ।

इस विषय में मनुजी लिखते हैं कि:—

"दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःख भागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥
सर्व लक्षण हीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽन सूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥"

(४-१५७, १५८)

दुराचारी पुरुष लोक में निन्दित और सदा दुःख का भोगने वाला रोगी और अल्पायु होता है, अतएव मनुष्य को सदाचार युक्त रहना चाहिये । जो पुरुष सदाचार युक्त है और पराये दोषों को नहीं देखता है, वह अपने शरीर के शुभ सूचक लक्षणों से रहित होने पर भी सौ वर्ष की आयु को प्राप्त होता है ।

मानसिक-उन्नति का हेतु

शारीरिक उन्नति के साथ ही साथ वालकों की मानसिक उन्नति करना भी हमारा कर्त्तव्य है । शारीरिक उन्नति के लिये जैसे व्यायाम और ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है, वैसे ही मानसिक उन्नति के लिये सदाचार और धार्मिक भावों की आवश्यकता है । अतः वालकों को सदाचार की भी शिक्षा करनी चाहिये जो मनुष्य सदाचारी होता है, उसी के अन्तःकरण में "धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह प्रतिभा, विद्या, सत्य, अक्रोध, दया, शान्ति आदि धार्मिक भावों का विकाश होता है" । धार्मिक भाव ही केवल मनुष्य जाति की पहिचान के लक्षण हैं, "*धर्मेण हीनाः पशुभिस्समानाः*" जिस मनुष्य में धर्म के लक्षण नहीं पाये जाते, उसे विना सींग और पूँछ का पशु समझना चाहिये ।

मनुष्यों में और पशुओं में केवल धर्म का ही भेद होता है। धर्म ही हमारी सर्वोन्नति का मूल कारण है। धर्म ही से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति होती है। यथा—

"धर्मः सर्व सुखंकरो हित' करो धर्मं बुधाश्चिन्वते ।
धर्मेणैव समाप्यते शिव सुखं धर्माय तस्मै नमः ॥
धर्मान्नास्त्य परः सुहृद्भवभृतां धर्मो हि द्रव्यं सताम् ।
धर्मे चित्त महं दधे प्रति दिनं हे धर्म ! मां पालय ॥"
"धर्माज्जन्म कुले शरीर पटुता सौभाग्यमायुर्वलम् ।
धर्मेणैव भवन्ति निर्मल यशो विद्यार्थ सम्पत्तयः ॥
कान्ताराच्च महाभयाच्च सततं धर्मः परित्रायते ।
धर्मः सम्यगुपासतां भवति हि स्वर्गापवर्ग प्रदः ॥"

(सुभाषित)

धर्म ही सब सुखों का करने वाला और हितकारी है, धर्म ही की चिन्ता बुद्धिमान् जन करते हैं, धर्म से ही कल्याण और सुख सम्यक् प्रकार से प्राप्त होता है, ऐसे धर्म के अर्थ नमस्कार है, धर्म से बढ़ कर दूसरा कोई मित्र मनुष्यों का नहीं है, धर्म ही सज्जनों का धन है, धर्म ही में प्रति दिन मैं अपना मन लगाऊँ, हे धर्म ! मेरा पालन कर। "धर्म से श्रेष्ठ कुल में जन्म होता है, शरीर की सुन्दरता सौभाग्य, आयु और बल होता है, धर्म से ही निर्मल यश, विद्या धन और सम्पत्तियां प्राप्त होती हैं, तथा वन से और महाभय से निरन्तर धर्म ही रक्षा करता है, भली भांति उपासना किया हुआ धर्म ही स्वर्ग और मोक्ष का देने वाला है"। अतः धर्म को कभी न छोड़ना चाहिये।

"न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुख दुःखेत्व नित्ये जीवो नित्येहेतुरस्यत्व नित्यः॥
(सुभा०)

अर्थात्—काम के वश होकर धर्म को न छोड़े, भय से धर्म को न छोड़े लोभ से धर्म को न छोड़े और जीवन के हेतु भी धर्म को न छोड़े, क्योंकि धर्म नित्य और सुख दुःख अनित्य है, जीव नित्य और उसका हेतु (शरीर) अनित्य है।

"वर्त्तमान में मुझे यह देख कर अत्यन्त दुःख होता है कि—धर्म प्राण आर्य जाति अन्यान्य जातियों की आदि शिक्षक तथा गुरु और आर्य्य धर्म अन्यान्य धर्मों का जनक तथा पालक होते हुये भी आज आर्य्य सन्तान धर्म भीरु हो रहे हैं।"

"यदि आर्य्य लोग अपने बालकों को धर्म वीर प्रह्लाद, अभिमन्यु, हकीकतराय धर्मी, तथा गुरु गोविंदसिंह के निर्भीक पुत्रों का केवल चित्र ही दिखा देते तो कभी ऐसे समाचार सुनने में न आते कि अमुक १०-१२ वर्ष के बालक को कोई गुण्डा भगा ले गया और उसे धर्मान्तर कर लिया, कदापि नहीं आर्य पुत्रों का तो यह सिद्धान्त था कि:—

सपदि विलयमेतु राजलक्ष्मी रुपरि पतन्त्वथ वा कृपाण धाराः ।
अपहरतु तरां शिरः कृतान्तो मम तु मतिर्न मनाग पैतु धर्मात् ॥
(सुभा०)

राज लक्ष्मी चाहे शीघ्र ही नष्ट हो जावै, अथवा शिर पर खड्ग की धारायें पड़ें, यमराज चाहे अभी शिर काट लेवै परन्तु हमारी मति धर्म से पृथक् न होवै।

"यदि इस प्रकार हिन्दू लोग अपनी बालिकाओं को सीता, सावत्री, अनुसूया और दमयन्ती आदि वीर स्त्रियों के फोटू दिखा कर उनके चरित्र श्रवण गोचर करा देते तो कभी ऐसे समाचार सुनने में न आते कि—अमुक बालिका पर अत्याचार हुआ और अमुक स्त्री भगाई गई कदापि नहीं।

"दमयन्ती सीता गार्गी, लीलावती विद्याधरी।
विद्योत्तमा मंदालसा थी, शास्त्र शिक्षा से भरी॥
ऐसी विदुषी स्त्रियें, भारत की भूषण होगई।
धर्म व्रत छोड़ा नहीं, गो जान अपनी खो गई॥

तात्पर्य—जिस जाति के मनुष्यों में धार्मिक बल और संगठन है, वही जाति संसार में अपनी जातीय सत्ता कायम रख सकती है, जिस जाति में धार्मिक बल और संगठन नहीं है वह जाति बहुत दिनों तक संसार में अपनी जातीय सत्ता (हस्ती) कायम नहीं रख सकती।

धार्मिक बल ही जातीय जीवन का प्रधान आश्रय है, इसकी कमी हुई और जातीय जीवन का ह्रास हुआ।

महर्षि—व्यास जी कहते हैं कि:—

"शक्तिमानप्यशक्तोऽसौ धनवानपि निर्धनः।
श्रुतवानपि मूर्खश्च यो धर्म विमुखो नरः॥

(व्या० भा०)

अर्थात् जो जाति अपने धर्म से विमुख है, वह कैसी ही बलवान् क्यों न हो, निर्बल है, धनवान् भी निर्धन है और

विद्यावान होने पर भी मूर्ख है" । सारांश—जिस जाति में अपने धर्म के लिये श्रद्धा नहीं है जिस जाति के खून में धार्मिक बल की बिजली नहीं दौड़ती है, अर्थात् जो जाति अपने धर्म के नाम पर मर मिटने को तैयार नहीं है, वह जाति आज या कल विलीन हुए बिना न रहेगी । अतएव जो जाति संसार में जीती जागती रहना चाहती है, उसे अपने धर्म को सुरक्षित रखना चाहिये, उसे अपने में धार्मिक बल जागृत बनाये रखने के लिये, बालकों को सबसे पहले धार्मिक शिक्षा देनी चाहिये ।

समस्त हिन्दू जाति के अंदर एक ऐसी प्रथा प्रचलित करने की चेष्टा होनी चाहिये कि—जो कोई अपने बालक का शिक्षारम्भ कराये, वह प्रथम धार्मिक शिक्षा से ही पाठारम्भ करने का ध्यान रक्खे ।

इसका अभिप्राय यह नहीं कि व्यवहारिक शिक्षा बिल्कुल ही न दी जाय अथवा धार्मिक ग्रन्थों के श्लोकों से ही अक्षर परिचय का श्री गणेश हो । किन्तु हिन्दू जाति के बच्चों को प्रथम देव-नागरी के दिव्य अक्षरों का शुद्ध संस्कृत तथा हिन्दी के पवित्र शब्दों का शुद्ध उच्चारण सिखा कर उन्हें पहले शौचाचार और सन्ध्योपासन की विधि* सिखानी चाहिये । तथा आरंभिक अभ्यास के तौर पर नीचे लिखे छोटे २ वैदिक वाक्य भी याद करा देने चाहिये जिससे बालकों के अंतःकरण में हिन्दू धर्म के संस्कार क्रमशः विकसित होते चले जायं ।

---

* उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ।
आचारमग्नि कार्यं च संध्योपासनमेवच ॥
(मनु० २।६९)

(शिक्षा वाक्य)

"*मांस न भक्षयेत्*" । (मांस को न खाना चाहिये)

"*सुरां न पिबेत्*" । (शराब न पीना चाहिये)

"*पर दारान्न गच्छेत्*" । (पर स्त्री गमन न करना चाहिये)

"*असत्यं न वदेत्*" । (झूठ न बोलना चाहिये)

"*स्वधर्मं न त्यजेत्*" । (अपना धर्म न छोड़ना चाहिये)

"*सत्यंवद धर्मंचर*" । (सत्य बोलना तथा धर्म से चलनाचाहिये)

"*स्वाध्यायान्माप्रमदः*" । (विद्याध्ययन में आलस्य न करना चाहिये)

"*सत्यान्न प्रमदितव्यम्*" । (सत्य से प्रमाद न करना चाहिये)

"*धर्म्मान्न प्रमदितव्यम्*" । (धर्म से भूल न करनी चाहिये)

"*मातृ देवो भव पितृ देवो भव*" । (माता पिता को देवता रूप जानना चाहिये)

"*आचार्य्य देवो भव अतिथि देवो भव*" (गुरु को और अतिथि को भी देवता तुल्य जान कर उनकी सेवा करनी चाहिये)

"एष वैदिक सनातनो धर्मः" । ऐसा वेदोक्त सनातन धर्म है।

इसका सदैव बालकों को पालन करना चाहिये।

इस प्रकार साधारण धार्मिक शिक्षा के पूर्ण रूप से समाप्त होने ही पर व्यवहारिक (स्कूल की) शिक्षा का आरम्भ होना चाहिये।

"वर्त्तमान समय में हिन्दू लोग अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा न देकर पहले ही स्कूलों में भर्ती कर देते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि—उनके चित्तपट पर हिन्दू संस्कृति—की रेखा विकसित नहीं होती अर्थात् मिट जाती है। वे अपने पूर्वजों का गौरव भूल जाते हैं। प्राचीन भारतीयता का उन्हें तनिक भी अभिमान नहीं रहता। वे नहीं जानते कि हमारा धर्म, साहित्य और देश का क्या गौरव है।"

"साधारण शिक्षितों की तो वार्त्ता ही क्या है प्रायः बी. ए.; एम. ए, एल—एल बी. तक पढ़े लिखे हिन्दू भी नहीं जानते कि हमारा सनातन धर्म क्या है और उसकी प्रधानतः कितनी शाखाएँ और प्रति शाखाएँ तथा उपशाखाएँ हैं। सारांश—बाल्यावस्था में धार्मिक शिक्षा न होने के कारण हम लोग अपने धर्म, साहित्य और सभ्यता तथा समाज के विषय में कुछ नहीं जानते। परन्तु पाश्चात्य धर्म, साहित्य तथा सभ्यता और समाज के विषय में बहुत कुछ जानते हैं। जिसका परिणाम यह हो रहा है कि—हमारा वैदिक धर्म तथा आर्य सदाचार और नीति—रीति हमारे हृदय से प्रति दिन निकलती जा रही है। तथा विदेशीय धर्म, नीति-रीति हमारे रग रग में प्रवेश करती जा रही है। यहां तक कि हम अपना वेश और मातृ भाषा के ग्रहण करने में भी शर्माते हैं।

और विजातीय वेश और भाषा के ग्रहण करने में अपने को गौरवान्वित समझते हैं।"

"हमारे बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हम अपने प्राचीन पुरुषों की जीवनचर्य्या को छोड़ कर किसी अन्य जाति का अनुकरण करते हैं और उसी में अपना गौरव और उन्नति समझते हैं। हमारा धर्म शास्त्र हमें क्या कहता है कि—*महाजनो येन गतः स पंथाः*"अर्थात् जिस मार्ग से तुम्हारे पूर्वज चले आये हैं, वही मार्ग तुम्हारे लिये श्रेयस्कर है।"

आज कल नई रोशनी के युवक कहते हैं कि हमारे पूर्वज तो असभ्य और जङ्गली थे। क्या, हमको भी अब असभ्य और जङ्गली रहना चाहिये। अपने पूर्वजों को असभ्य कहना यह दोष हमारे युवकों का नहीं है किन्तु यह दोष उनके पठित इतिहास का है।

हमारे बालकों को इतिहास के नाम से जो कुछ आज पढ़ाया जाता है वह वास्तव में इतिहास कहे जाने योग्य नहीं है। वह बतलाता है कि हिन्दू सभ्यता और हिन्दू साहित्य केवल दो ढाई हजार वर्षों का ही है। वह बतलाता है कि भारतवासी इस देश के निवासी हैं ही नहीं। उनके पूर्वज मध्य ऐशिया से आये। वे पशु चराते थे, मांस खाते थे, असभ्य थे, जङ्गली थे और भिखमंगे थे। उन्होंने जो गड़रिया गीत गाया वही वेद है। इत्यादि अयोग्य बातें हमारे पूर्वजों के विषय में वह इतिहास बतलाता है। इसी कारण से हमारे युवक अपने पूर्वजों को असभ्य और जङ्गली समझते हैं।

तात्पर्य यह है कि-जो जाति अपने प्राचीन धर्म और पूर्वजों के गौरव को भूल जाती है या उनके प्रति दोष-दृष्टि परायण हो जाती है, वह जातीय जीवन में कदापि उन्नति नहीं कर सकती।

पाश्चात्य विद्वान् मोक्षमूलर साहब ने सत्य कहा है कि "जो जाति अपने प्राचीन गौरव, इतिहास और साहित्य से अपने को गौरवान्वित नहीं समझती, वह अपने जातीय जीवन के प्रधान आश्रय को नष्ट कर डालती है।" आर्य्य जाति और उसके प्राचीन निवासस्थान भारतवर्ष के विषय में प्रोफेसर मोक्षमूलर साहब (India what it can teach us) हिन्दुस्तान हमें क्या शिक्षा देता है; नामक पुस्तक में लिखते हैं कि—"समस्त पृथ्वी में यदि ऐसा कोई देश मुझे बतलाना हो जिसको प्रकृति माता ने धन, ऐश्वर्य्य, शक्ति और सौन्दर्य्य के द्वारा पूर्ण कर रखा है, यहां तक कि-जिसे पृथ्वी में स्वर्ग कहने पर भी अत्युक्ति न होगी तो मैं मुक्त कंठ होकर बता दूंगा कि वह देश भारतवर्ष है"।

"यदि कोई मुझ से कहे कि-किस आकाश के नीचे मनुष्य अन्तःकरण की पूर्णता हुई, और जीवन रहस्य के कठिन सिद्धान्त की मीमांसा हुई थी जिस से प्लेटो तथा क्याण्ट जैसे दार्शनिक पुरुषों के दार्शनिक ग्रन्थों के पाठक भी ज्ञानवान हो सकते हैं, तो मैं बतला दूंगा कि वह देश भारतवर्ष है।"

"यदि मैं अपनी आत्मा से पूछूं कि-हम यूरोपवासी जिनकी चिंता शक्ति की पुष्टि ग्रीक, रोमन तथा सेमेटिक जाति की चिंता शक्ति के द्वारा हुई है, लेकिन अपने जीवन को पूर्ण उदार,

विश्वव्यापी और मनुष्यत्वपूर्ण बनाने के लिये तथा इस जीवन के सिवाय चिर जीवन पूर्णोन्नत बनाने के लिये किस साहित्य और शास्त्र से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं ? तो मुझे यही उत्तर मिलेगा कि वह देश[1] भारतवर्ष है" ।

"भाषा; धर्म, पुरावृत्त, दर्शनशास्त्र, आचार, शिल्प और विज्ञान कोई भी विषय मनुष्य जानना चाहे, सभी का अपूर्व अनुपम आदर्श प्रकृति के अनन्त भाण्डार भारतवर्ष में ही प्राप्त हो सकता है" ।

"इसी प्रकार १–२ फ़रवरी १८८४ के "डेली ट्रब्यून" नामक पत्र में ब्राऊन (D. O. Brown) साहब ने स्वीकार किया है कि–"यदि हम पक्षपात रहित होकर भली भांति परीक्षा करें, तो हमको स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दू ही सारे संसार के साहित्य, धर्म और सभ्यता के जन्मदाता हैं" ।

आर्य्य जाति के प्राचीन इतिहास को मनन करने से उपर्युक्त पाश्चात्य विद्वानों की बातें अक्षरशः सत्य मालूम होती हैं ।

यदि हमारे युवक–मोक्षमूलर और ब्राऊन साहब की तरह अपना प्राचीन इतिहास पढ़ते तो कभी ऐसा न कहते कि–हमारे पूर्वज असभ्य और जङ्गली थे ।

---

१ हाँ, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिर मौर है ।
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ॥
भगवान की भवभूतियों का यह प्रथम भाण्डार है ।
विधि ने किया नर–सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है ॥

प्रस्तुत—हमें अपने इतिहास और अपनी प्राचीन परम्परा का ज्ञान अवश्य ही प्राप्त करना चाहिये। हमारी शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि भारतीय सभ्यता का पूर्ण ज्ञान रखते हुए हमारे बालक समाज के पथ-प्रदर्शक होकर अपनी जाति, देश और धर्म के सच्चे सेवक बनें।

आत्मोन्नति का हेतु

ह पहले ही कहा जा चुका है कि मनुष्य जाति की पूर्णोन्नति के तीन अङ्ग हैं, शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। इन तीनों अङ्गों का यथातथ्य विकाश करना आर्य शिक्षा का परमोद्देश्य है।

शारीरिक और मानसिक दो अङ्गों की उन्नति का ऊपर उल्लेख कर चुका हूं। अब अन्तिम उन्नति के विषय में भी कुछ कहना चाहता हूं। आध्यात्मिक विद्या का यह सिद्धान्त है कि अपने आपको भली प्रकार जाने बिना सर्व ऐश्वर्य और संसार भर का ज्ञानोपार्जन कर लेने पर भी मनुष्य शोक रहित होकर उन्नति नहीं पा सकता। इस विषय में गीता में अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा है कि:—

"न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्, यच्छोक मुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्न मृद्धं, राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥"
(गीता० २-८)

मुझे निष्कण्टक पृथ्वी का राज्य और स्वर्ग का राज्य भी मिले तो भी मेरी इन्द्रियों को कष्ट देने वाले इस शोक को दूर करने का उपाय मुझे दिखाई नहीं देता है।" इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि—"एक समय जब नारद मुनि ने सनत्कुमार ऋषि के पास जाकर प्रार्थना की कि हे भगवन् ! मुझको शिक्षा दीजिये तब सनत्कुमार बोले कि—हे नारद ! जो जो विद्यायें तुमने पढ़ी हैं उन सब को पहले मुझसे कहो, तत्पश्चात् मैं तुमको शिक्षा करूँगा। सनत्कुमार के पूंछने पर नारद ने कहा कि,—ऋग्वेद, यजुर्वेद; सामवेद, अथर्ववेद इतिहास, पुराण, गणित और फलित (ज्योतिष शास्त्र) निधिशास्त्र, तर्क शास्त्र, नीति शास्त्र, व्याकरण शास्त्र, श्राद्ध कल्प, शिक्षा कल्प (छन्दादि विद्या) धनुर्विद्या, भूत विद्या (पदार्थ विद्या) सर्प देव जन विद्या इत्यादि सब विद्याएँ मैं जानता हूँ परन्तु "*अहं भगवो शोचामि*" हे भगवन् ! मैं शोक युक्त हूँ, मैंने आप जैसे महात्माओं से सुना है कि—"*तरति शोकमात्म वित्*" आत्म ज्ञानी शोक को पार कर जाता है। यदि यह बात ठीक है तो मुझको आत्म विद्या की शिक्षा दीजिये।

तात्पर्य यह है कि—अपने आपको जाने बिना मनुष्य की सब विद्याएँ *दर्वी पाक रस के समान हैं अर्थात् जिस मनुष्य ने यह

* पठन्ति चतुरो वेदान्धर्म शास्त्राण्यनेकशः ।
आत्मानं नैव जानंति दर्वी पाक रसं यथा ॥ (चा० नी० ७५, १२)

नहीं जाना कि "हम" क्या चीज हैं, कहाँ से आये, किस लिये आये; कहाँ जायेंगे, जीवन का क्या फल है? मनुष्य का क्या कर्त्तव्य है? जन्म मरण किसको होता है, बंध मोक्ष क्या चीज है? सुख, दुःख, हर्ष, शोक, काम, क्रोध किसके धर्म हैं, पुरुष क्या वस्तु है? पुरुषार्थ क्या चीज है? इत्यादि मीमांसा के द्वारा जिसने अपने आपको ही नहीं जाना, वह दूसरों को कैसे जान सकता है। जिसने अपना ही रास्ता ठीक नहीं समझा, वह दूसरों को कैसे सीधे रास्ते पर ला सकता है, जिसने अपना ही चरित्र नहीं बनाया, वह दूसरों की जिन्दगी कैसे सुधार सकता है। शिक्षा का अर्थ ही जिसको मालूम नहीं है, वह अन्यों को कैसे शिक्षा दे सकता है? छान्दोग्य उपनिषद् के छठे अध्याय में एक कथा लिखी है कि—उद्दालक मुनि का पुत्र 'श्वेतकेतु' बारह वर्ष पर्यन्त आचार्य के पास रह कर सब वेदों को भली भाँति पढ़ कर, प्रमत्त स्वभाव वाला और अपने को सब से अधिक विद्वान् मानने वाला महा अहंकारी होकर अपने घर वापिस आया, तब उसके पिता ने उसको महा अहंकारी नम्रता हीन देख कर कहा कि क्या तूने अपने आचार्य से उस शिक्षा को भी प्राप्त किया है।

"येनाश्रुत ꣳ श्रुतं भवत्यमतं मत विज्ञातं विज्ञातमिति"

(छान्दोग्य० उ० ६, १, ३)

जिससे नहीं सुना हुआ सुना हुआ होता है, नहीं मनन किया हुआ मनन किया हुआ होता है और अविज्ञात भी विज्ञात (जाना हुआ) होता है। यह सुन कर श्वेतकेतु ने अपने पिता से नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि, यह विद्या मैं नहीं जानता हूँ—

हे भगवन् ! आप कृपा कर बतलाइये कि वह विद्या कौनसी है ? तब पिता ने कहा कि वह आत्म विद्या है । जिसके जानने से यह सारा संसार जाना जाता है । "*यस्मिन्विज्ञाते सर्व मिदं विज्ञातं भवति*" तात्पर्य अध्यात्मिक ज्ञान के बिना; निखिल शास्त्र-वेत्ता होने पर भी मूर्ख ही होता है "*शास्त्राण्य धीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान्पुरुषः स विद्वान् ।*" सारांश—निजात्म ज्ञान ही विद्वत्ता का चिह्न (लक्षण) है । "*ज्ञानेन हीना पशुभिः समानाः ।*" अर्थात् ज्ञान से हीन नर पशु के समान समझा गया है । अतएव ज्ञान को प्राप्त करना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है । ज्ञान में सब कर्त्तव्यों का समावेश है । "*सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।*" अर्थात् समस्त वैदिक कर्मों का उद्देश्य (फल) ज्ञान है । सब उपनिषद् ज्ञान को ही प्रतिपादन करते हैं, ज्ञान से ही मनुष्य जन्म मृत्यु रूपी संसार से पार होकर अमर भाव को प्राप्त होता है । यथा:—"*विद्यया-मृतमश्नुते ।*" विद्या (आत्म ज्ञान) से अमर भाव को प्राप्त हो जाता है । (ईश० ११) । "*ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः ।*" परमात्मा देव को जान कर वह फिर सब पाशों (बन्धनों) से छूट जाता है । (श्वेता० १, ११, ५, १३, १६, १३) । "*तमेव विदि-त्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।*" उस (परमात्मा देव) को जान लेने से मृत्यु को तर जाता है अर्थात् अमरत्व को पा जाता है, अन्यथा मोक्ष प्राप्ति का दूसरा मार्ग नहीं है । (श्वेता० ३, ८) । "*य एवं वेदाऽहं ब्रह्मास्मीति, सइद ꣳ सर्वं*

भवति, तस्य ह न देवाश्चनाभूत्या ईशते आत्मा ह्येषाꣳ स भवति।" जो ऐसा जानता है कि–'मैं ब्रह्म हूं' वह यह सब कुछ हो जाता है, और देवता भी उसके ऐश्वर्य के रोकने में समर्थ नहीं होते क्योंकि वह (देवताओं) का आत्मा हो जाता है। (बृह० अ० १, ब्रा० ४, मं० १०)। *"तमेव मन्य आत्मनं विद्वान्ब्रह्मामृतोऽमृतं।"* उसी अमृत रूप ब्रह्म को अपना आत्मा मानता है, वह विद्वान् अमर हो जाता है। (बृह० ४, ४, १७)।

"तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेन इति।" जिसे यह मालूम हो गया कि सब कुछ आत्मामय है, वह फिर किसी पाप कर्म से लिप्त नहीं होता। (बृहदा० अ० ४, ब्रा० ५, मं० २३)। *"यथा पुष्कर पलाश आपो न श्लिष्यन्ते, एव मेवं विदि पाप कर्म न श्लिष्यते इति।"* जैसे कमल पत्र पर जल नहीं ठहरता, है वैसे इस (आत्म) विद्या के जानने वाले को पाप कर्म नहीं चिमटता है। (छांदो० ४, १४, ३)।

"एतꣳ सेतुं तीर्त्वान्धः सानन्नन्धोभवति
विद्धः सनविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति इति॥"

इस हृदायाकाश सेतु रूप ब्रह्म को पाकर अन्धा नेत्र वाला होता है, दुःखी सुखी हो जाता है और रोगी अरोगी हो जाता है। (छां० उ० अ० ८, खं० ४, मं० २,) *"ॐ ब्रह्म विदाप्नोति परम्।"* ब्रह्म का जानने वाला सर्वोच्च (मोक्ष पद) को प्राप्त होता है। (तै० ब्रह्मवली, अनु० १)।

"भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

उस पर व अपर ब्रह्म के दर्शन से हृदय की ग्रन्थि (घुण्डी) खुल जाती है, सारे संशय कट जाते हैं और उस ब्रह्म दर्शक (ब्रह्मवेत्ता) के सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं। (मुं० २, २, ८)

"स यो ह वैतत् परम् ब्रह्मवेद, ब्रह्मैवभवति।" वह जो उस पर-ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है। (मुं० ३, २, ९)

इत्यादि श्रुति वाक्य आत्म ज्ञान के महत्त्व को बतला रहे हैं। इसी प्रकार स्मृति वाक्य भी ज्ञान की महिमा कर रहे हैं।

मनुजी कहते हैं कि:—

"सर्व भूतेषु चात्मानं सर्व भूतानिचात्मनि ।
समंपश्यन्नात्म याजी स्वाराज्य मधि गच्छति ॥"

(मनु० स्मृ० १२ । ९१)

स्थावर जंगम सब जीवों में आत्मा (अपने आप) को देखता है और आत्मा में सब जगत् को देखता है, वह स्वराज्य (ब्रह्मत्व) को प्राप्त होता है। ऐसे ही ज्ञान के विषय में भगवान् ने गीताजी में कहा है। कि:—

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योग संसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥

अर्थात् इस संसार में ज्ञान से बढ़ कर दूसरी चीज नहीं है, उस ज्ञान को कर्म योग के द्वारा अंतःकरण शुद्ध होने पर मनुष्य स्वयं प्राप्त कर लेता है। इत्यादि।

प्रस्तुत—विषय में बालकों का अन्तःकरण स्वभावतः कोमल और शुद्ध होता है, अतः उन्हें सब से प्रथम आत्म ज्ञान का उपदेश देना चाहिये ।

"जिस दिन बालक का जात कर्म संस्कार हो, उसी दिन बालक को ज्ञान का "बीज मन्त्र" (ॐ) कान में सुना कर "त्वंवेदोसि" अर्थात् तू ज्ञान स्वरूप है । यह वाक्य उसे सुनाना चाहिये । तत्पश्चात् बालक की ज्ञानोन्नति के लिये व्यवहारिक शब्दों का प्रयोग न करके महारानी मदालसा की तरह बालक को ज्ञान शिक्षा ही देनी चाहिये । मदालसा अपने छोटे बच्चों को लोरी देती हुई इस प्रकार ज्ञानोपदेश देती थी कि:—

मदालसाष्टक

"शुद्धोसि बुद्धोसि निरंजनोसि, संसार माया परिवार्जितोऽसि ।
संसार स्वप्नंत्यज मोहनिद्रां, मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम् ॥१॥

मदालसा अपने पुत्र से कहती है कि हे पुत्र ! तू शुद्ध स्वरूप और निरंजन, निर्विकार है, संसार रूपी जितना कि माया का जाल है, उससे तू रहित है, यह संसार रूपी स्वप्न, मोह रूपी निद्रा के कारण तुझ को आरहा है, सो तू मोह निद्रा का त्याग करके अपने आत्म स्वरूप में जाग ।

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम, कृतं हि तत्कल्पनयाधुनैव ।
पञ्चात्मकंदेह मिदं तवैव तन्नास्ति त्वं रोदिषि कस्य हेतोः ॥२॥

हे प्यारे ! तू शुद्ध स्वरूप है, तेरा नाम वास्तव में कुछ भी नहीं है, यह नाम तो अभी कल्पना करके ही रक्खा गया है, यह नाम रूप दोनों तेरे विषे कल्पित हैं, और पंचभूतों (आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी) का कार्य रूप जो शरीर है, सो यह भी निश्चय करके तुम्हारा नहीं है, क्योंकि तुम देहरूप नहीं हो, किन्तु तुम देह से भिन्न चिदात्मा हो फिर किस कारण से रुदन करते हो ।

"नवैभवान् रोदिपि विश्व जन्मा, शब्दोऽयमासाद्य महीं शसूनुम् ।
विकल्प माना विविधागुणास्ते, गुणाश्च भौमा: सकलेन्द्रियेपु ।३॥

हे प्रिय दर्शन ! निश्चय करके तुम तो नहीं रोते हो क्योंकि तुम तो विश्व जन्मा अर्थात् सब विश्व की उत्पत्ति के कारण हो, यह रोने का जो शब्द है, सो राजा के पुत्र के शरीर को प्राप्त होकर होता है अर्थात् राजा के पुत्र भाव को प्राप्त हुआ यह तुम्हारा शरीर रोता है और कल्पना किये गये जो नाना प्रकार के गुण हैं, सो यह सब तुम्हारे नहीं हैं, किन्तु भूमि आदि पांच भूतों के और सर्व इन्द्रियों के हैं तुम तो मन इन्द्रियों के साक्षी हो।

भूतानि भूत: परिदुर्बलानि वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंस: ।
अन्नाम्बु दानादि भिरेवकस्य, नतेस्ति वृद्धिर्नचतेऽस्तिहानि ॥४॥

पञ्ची करण कारण भूतों से दुर्बल जो कि स्थूल भूत हैं, वे जैसे वृद्धि को प्राप्त होते हैं, वैसे ही इस लोक में पुरुप का शरीर भी अन्न जलादिकों करके निश्चय ही वृद्धि को प्राप्त होता है, परन्तु तुम्हारी न वृद्धि होती है न हानि ही होती है, क्योंकि

तुम शरीर नहीं हो, अर्थात् शरीर से रहित अविनाशी आत्मा हो इसलिये तुम्हें रोना न चाहिये ।

"त्वं कञ्चु केशीर्य्यमाणो भिजेस्मिन्स्व देहे मूढ़तां माव्रजेथाः ।
शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मदादि मूढ़ैः कञ्चु कस्तेपिनद्धम् ॥५॥"

हे तात ! तुम इस दृश्यमान् अपने शरीर रूपी देह में मूढ़ भाव को मत प्राप्त हो; हे प्यारे ! यह देह तो कपड़े की तरह और नाशवान् है, और भले बुरे कर्मों को करके यह देह बना है, जैसे तुम्हारे पहरने के कपड़े से शरीर भिन्न है, वैसे ही तुम इस शरीर से भिन्न हो, परन्तु मदादि करके इस देह में फँस गये हो, वास्तव में तुम्हारा शरीर से कोई सम्वन्ध नहीं है ।

"तातेतिकिञ्चित्त नयेति किञ्चि दम्बेति किञ्चिद्दयतेति किञ्चित ।
ममेति किञ्चिन्न ममेति किञ्चित् त्वंमूल सङ्घं वहुमानयेथाः ॥६॥

महारानी मदालसा कहती है कि हे पुत्र ! तू किसी को पिता और किसी को पुत्र और किसी को माता और किसी को स्त्री और किसी को अपना और किसी को पराया इस प्रकार मत जान किन्तु तू इन सबों के मूल कारण जो कि पांच भूत हैं उनका समुदाय रूप करके इन सबों के शरीरों को विशेष रूप से जान, हे तात तू तो इन सब से निराला है ।

दुःखानि दुःखोपशमाय भोगान्, सुखाय जानाति विमूढ चेताः ।
तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि, जानात्य विद्वान्सुविमूढ चेताः ॥७॥

हे पुत्र ! विशेष करके मूढ है चित्त जिनका ऐसे पुरुष ही दुःख रूप भोगों को दुःख की शांति का उपाय जानते हैं, अज्ञानी

अतिशय कर मूर्ख होते हैं वे निश्चय करके उन्हीं दुःख रूप भोगों को फिर सुख रूप करके जानते हैं। पर तू उन्हें दुःख रूप मिथ्या जान।

हासोऽस्थि सन्दर्शन मक्षि युग्म, मत्युज्ज्वलं तर्जन मङ्गनायाः।
कुचादि पीनं पिशितं घनंतत्, स्थानं रतेः किं नरकं न योषित्॥८॥

मदालसा कहती है कि हे तात! स्त्रियों का जो हंसना है वह मानो हड्डियों का ही दिखाना है और अति उज्ज्वल दोनों नेत्रों से स्त्री का पुरुष की तरफ देखना है, सो मानो तिरस्कार करना है, और स्त्री के कठिन जो दो कुच हैं, सो मांस की सघन गांठें हैं, एवं स्त्री का जो भोग करने का योनि स्थान है, सो क्या नरक का कुण्ड नहीं है किन्तु अवश्य है क्योंकि उसमें प्रेम करने वाले नरक गामी होते हैं, हे पुत्र! तुझे स्त्री में प्रेम न करना चाहिये।

"यानं क्षितौ यान गतं च देहं, देहेऽपि चान्यः पुरुषोनिविष्टः।
ममत्व बुद्धि र्न तथा यथास्व, देहेऽतिमात्रं वत मूढतैषा"॥९॥

हे प्रिय दर्शन! पृथिवी पर पालकी रहती है और उस पालकी में शरीर रहता है और निश्चय करके शरीर में अन्य चेतन पुरुष स्थित है, जैसे अपनी देह मात्र में तुम्हारी ममता हो रही है, तैसे पुरुष (आत्मा) में नहीं है यही तुम्हारी मूर्खता है। तात्पर्य- जैसे पालकी आदि में देह की तरह ममता नहीं है, तैसें देह में भी ममता त्याग करके तुम अपनी आत्मा में ही ममत्व बुद्धि को करो क्योंकि यह देहादि पदार्थ मिथ्या हैं।

इस प्रकार राजमहिषी मदालसा ने अपने विक्रान्त, सुवाहु और शत्रु मर्दन इन तीन पुत्रों को आत्म ज्ञान की शिक्षा देकर, उन्हें संसार बन्धन से मुक्त कर दिया । अन्त में जब चतुर्थ पुत्र हुआ तब राजा ने रानी से कहा कि—इस पुत्र को तुम प्रथम धर्म-नीति का उपदेश करो । तब पति की आज्ञानुसार श्रीमती ने अपने चतुर्थ पुत्र अलर्क को राजनीति और धर्म नीति का उपदेश आरम्भ किया । उसका सारांश इस प्रकार है ।

"पुत्र ! वर्द्धस्व मद्भर्तुः मनोनन्दय कर्मभिः ।
मित्राणामुपकाराय, दुर्हृदां नाशनाय च ॥१॥"

"धन्योऽसिरे यो वसुधाम शत्रु—
रेकाश्चिरं पालयितासि पुत्र ! तत् पालनादस्तु सुखोपभोगो,
धर्म्मात्फलं प्राप्स्यासि चामरत्वम् ॥२॥

"धरामरान् पर्वसु तर्पयेथाः, समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः ।
हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथाः, मनः परस्त्रीषु निवर्त्तयेथाः ॥३॥"

"राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथाः साधून् रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः ।
दुष्टान् निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये, गो विप्रार्थे वत्स मृत्युं व्रजेथाः ॥४॥"

अर्थात् हे पुत्र, तेरी पूर्ण वृद्धि हो, मित्रों के उपकार तथा शत्रुओं के नाश के लिये कर्त्तव्यों का अनुष्ठान कर, तू मेरे पति को आनन्दित कर । हे पुत्र, तू धन्य है; क्योंकि बहुत दिनों तक शत्रुओं से रहित होकर तू पृथ्वी का पालन करेगा । तेरे पृथ्वी का पालन करने से प्रजाएं सुखी हों । प्रजाओं को सुख पहुँचाने से

धर्म होगा । और वह सब धर्म संचय होगा, तब तू अमरत्व पावेगा । प्रत्येक पर्व पर ब्राह्मणों को तृप्त करना, बन्धुबान्धवों की अभिलाषा पूरी करना, सदा दूसरे की भलाई का विचार रखना और पराई स्त्रियों की ओर कदापि मन न लगाना । हे पुत्र, तू राजपद पाकर सुहृदों को आनन्दित करना, साधुओं की रक्षा के लिये यज्ञानुष्ठान करना और गो तथा द्विजों की रक्षा के लिये युद्धस्थल में दुष्टों और आततायियों का नाश कर परलोक गमन करना ।

"प्रागात्मा मन्त्रिणश्चैव, ततो भृत्या महीभृता ।
जे याश्चानन्तरं पौरा, विरुद्धेत् ततोऽरिभिः ॥५॥"
यश्चैतान्न विजित्यैव, वैरिणो विजिगीषते ।
सोऽजितात्मा जितामात्यः शत्रु वर्गेण बाध्यते ॥६॥"
"तस्मात् कामादयः पूर्व्वं, जेयाः पुत्र महीभुजा ।
तज्जये हि जयोऽवश्यं राजा नश्यति तैर्जितः ॥७॥"
"कामः क्रोधश्च लोभश्च, मदो मानस्तथैव च, ।
हर्षश्च शत्रवोह्येते, विनाशाय महीभृताम्" ॥८॥"

अर्थात्—नरपति को उचित है, कि पहले अपने को, उसके बाद मन्त्रियों को, उसके बाद पुरवासियों को वशीभूत करे । जब ये सब वशीभूत होजायें, तब शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करे । जो नृपति इन सब को बिना जीते ही शत्रुओं पर विजय पाने की इच्छा करता है, वह अजितात्मा महीपति अमात्यों

द्वारा विजित होकर शत्रुओं के वशीभूत हो जाता है। हे पुत्र, इसलिये पहले कामादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर। इन पर विजय प्राप्त कर लेने से, शत्रुओं पर विजय प्राप्त होना अनिवार्य्य हो जाता है।

"कामप्रसक्तमात्मानं, स्मृत्वा पाण्डुम् निपातितं।
निवर्त्तयेत्तथाः क्रोधादनुह्रादम् हतात्मजम् ॥६॥"
"हतमैलं तथा लोभादम्भाद्वेणुं द्विजैर्हतम्।
माना दनायुषा पुत्रं, वलिं हर्षात् पुरञ्जयम् ॥१०॥"
"येभिर्जितैर्जितं सर्वं, मरुत्तेन महात्मना।
स्मृत्वा विवर्जयेदेतान्, दोषान् स्वीयान् महीपतिः ॥११॥"

अर्थात्—काम के वशीभूत होकर राजा पाण्डु विनष्ट होगये, क्रोध से अनुह्राद पुत्र-रत्न से वंचित होगये, लोभ से ऐल और मदोन्मत्त होकर राजा वेणु, ब्राह्मणों द्वारा काल कवलित होगये। अनायुषा का पुत्र वलि, अभिमान से नष्ट होगया और पुरंजय हर्ष के वशीभूत हो मृत्युग्रस्त हुआ। महाराज मरुत ने उन काम क्रोधादि रिपुओं को पराजित कर समस्त संसार को अपने वश में किया था। राजाओं को उचित है कि इन उदाहरणों को देख कर अपने दोषों को दूर करें।

"यदा दुःख मसह्यन्ते प्रिय वन्धु वियोगजम्।
शत्रु वाधोद्भवं वापि, वित्तनाशाच्चसम्भवम् ॥१२॥"

"भवेत्तत् कुर्व्वतोराज्यं गृह धर्मावलम्बिनः।
दुःखायतन भूतोहि, ममत्वालम्बिनो गृही" ॥१३॥
"वाच्यंते शासनं पट्टे, सूक्ष्माक्षर निवेशितम् ॥१४॥"

भावार्थः—हे पुत्र, गृहस्थ, सर्व्वदा ममत्त्वपरायण होते हैं। सुतरां, सहज ही दुःखों के आधार स्वरूप हो जाते हैं। इस कारण मैं कहती हूं कि गृहधर्मावलम्बी होकर राज्य का शासन करते हुए, जिस समय तुम्हें प्रिय बन्धु वियोग जनित अथवा अर्थ क्षय जनित, दुरसह दुःख उपस्थित हो, उस समय मेरी दी हुई इस अंगूठी के भीतर से पत्र निकाल करके, उसके भीतर जो छोटे २ अक्षरों में शासन लिखा है उसे पढ़ना। यह कह कर मंदालसा ने, सोने की अंगूठी देकर पुत्र को गृहस्थों के उपयुक्त आशीर्वाद दिया। इसके बाद कुवलयाश्व, पुत्र को राज्य प्रदान कर, देवी मदालसा के साथ वानप्रस्थाश्रम का अवलम्बन करते हुए तपस्या के लिये वन को चले गये।

धन्य! ऐसे माता पिता को जो शिशु अवस्था में ही अपने बालकों को धार्मिक तथा आत्म ज्ञान की शिक्षा करें। तात्पर्य जिस बालक के माता पिता ज्ञानवान्, धार्मिक होते हैं, उनकी सन्तान भी ज्ञानवान् और धार्मिक होती है। वेद में लिखा है कि "*मातृमान पितृमानाचार्य पुरुषो वेद*" अर्थात् माता पिता और आचार्य इन तीनों के द्वारा मनुष्य ज्ञानवान् होता है। अर्थात् यह तीनों ही बालक की शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक उन्नति के जिम्मेवार (गार्जियन) तथा शिक्षक हैं।

गर्भाधान से लेकर पांच वर्ष तक माता, छः वर्ष से आठ वर्ष तक पिता और ९ वर्ष से लेकर जब तक पूर्ण ज्ञान प्राप्त न हो तब तक आचार्य्य शिक्षा करे।

बच्चे की शिक्षा जन्म से ही आरम्भ होती है, यह बात माता पिता को भूल न जाना चाहिये। बच्चे के सच्चे शिक्षक माता पिता ही होते हैं। जिस दिन बालक का जन्म हो, उसी दिन से उसकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शिक्षा शुरू कर देनी चाहिये।

भगवान् ऋषभदेव जी कहते हैं कि:—

"गुरुर्न सस्यात्स्वजनो न सस्यात्पिता न सस्याज्जननी न सास्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च सस्यान्न मोच येद्यः समुपेत मृत्युम्॥"

(भा० ५-५-१८)

अविद्या रूपी मृत्यु के वश में पड़े हुए, बालक को ज्ञानोपदेश देकर जो नहीं छुड़ाता है वह गुरु नहीं है, वह स्वजन नहीं है, वह पिता नहीं है, वह माता नहीं है, वह देव नहीं है और वह पति भी नहीं है; किन्तु वे सब शत्रु हैं। अर्थात् जो मनुष्य बालकों को धार्मिक शिक्षा देने में असमर्थ है, वह किसी का गुरु न बने, स्वजन न बने और माता पिता पुत्र को उत्पन्न करने का भी प्रयत्न न करे।

इति आत्मोन्नति
शिक्षा प्रकरण समाप्त।

पुस्तक परिचय

पुस्तक का विषय पुस्तक पढ़ने ही से ज्ञात होता है किंतु फिर भी यहां पर थोड़ा परिचय करा देता हूं, जिससे कि पाठकों की मूल ग्रन्थ के पठन में रुचि हो ।

इस संसार में अन्यान्य धर्मों को छोड़ कर केवल हिन्दू जाति में ही अनेक सम्प्रदाय और सैकड़ों मत पंथ हैं । ऐसी स्थिति में "मौलिक" धर्म का निर्णय करना वड़ा कठिन है । इसी कठिनाई को देख कर ही धर्मराज युधिष्ठिर ने यक्ष से कहा कि:—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयोविभिन्ना नेको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पंथाः ॥

(म० भा० व० ३१२–११५)

धर्म का निर्णय यदि तर्क से किया जाय तो वह निर्णय शून्य है, और श्रुतियां परस्पर विरुद्ध अर्थ वाद वाली हैं, और ऋषि भी उनकी व्याख्या करने वाले परस्पर विरुद्ध हैं अर्थात् ऋषियों का मत भी एक नहीं, और धर्म का तत्त्व गुहा अर्थात् गुप्त भाव में स्थिर (छिपा हुआ) है, इसलिये महाजन जिस मार्ग से चले आये हैं, वही धर्म मार्ग मनुष्योंको अनुकरणीय है।

अब यहां पर प्रश्न उठता है कि-महाजन किसको कहना चाहिये, कोई तो महाजन शब्द का अर्थ "*महान् जन समूहः*" अर्थात् बहुत सा जन समूह कहते हैं, और कोई '*महान्तो जनाः*' अर्थात् सदाचारी (सत्पुरुष) ऐसा अर्थ करते हैं, यदि प्रथम अर्थ मान लिया जाय तो बहुत सा जन समूह "साधारण" (संसारी) लोगों का है; वे स्वयं धर्माधर्म मार्ग से विमूढ़ हैं, उनके मार्ग में चलना तो मानो श्रुति में कथित "*अंधेनैव नीयमाना यथान्धाः*" जैसे अन्धा पुरुष अन्धे करके ही ले गया हुआ भ्रमता है, वैसे धर्म जिज्ञासु पुरुष भी संसार चक्र में ही भ्रमेगा; अब यदि दूसरा 'अर्थ' सदाचारी पुरुष मान लिया जाय तो यह निर्णय नहीं हो सकता कि-किस सदाचारी का धर्म मार्ग सर्वलोक हित-प्रद है। क्योंकि सदाचारी अनेक हुये हैं अर्थात् संसार में प्रायः सभी आचार्य सत्पुरुष हुये हैं। परन्तु सब के धर्म मार्ग भिन्न २ हैं अर्थात् किसी का कर्म मार्ग, किसी का उपासना, किसी का ज्ञान मार्ग हैं। फिर उनमें भीः—

"*नाना विधानि ज्ञानानि नाना रूपा उपास्तयः।*
नाना विधानि कर्माणि श्रुत्यन्तादिषुसंविदुः॥"

(सू० गी० ४,३३)

श्रुति आदि ग्रन्थों में नाना प्रकार के ज्ञान, नाना प्रकार की उपासनाएँ और नाना प्रकार के कर्म मार्ग हैं। जैसे-नित्य, नैमित्तिक, काम्य, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इत्यादि

कर्म मार्ग हैं, वैसे ही ब्रह्म, विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और अवतारोपासना तथा निर्गुण ब्रह्मोपासना एवं योगोक्त-मंत्र, हठ, लय राजयोग इत्यादि उपासकों के मार्ग हैं। इसी प्रकार द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और शुद्धाद्वैत इत्यादि ज्ञान के मार्ग हैं। तात्पर्य-उपर्युक्त सब धर्माङ्ग महाजनों के ही मार्ग हैं। परन्तु इनमें से कौनसा धर्म मार्ग सर्व मनुष्यों के लिये उपयोगी माना जाय, यह एक स्वभावतः प्रश्न होता है ? इसका साधारण रीति से उत्तर यह है कि-संसार भर के धर्मों का जो मूल कारण है अर्थात् पूर्वोक्त सर्वधर्माङ्ग जिसकी शाखा प्रति शाखा तथा उपशाखाएँ हैं वही "मौलिक धर्म" मनुष्य मात्र के लिये उपयुक्त है। अब वह धर्म कौन सा और कैसा है; तथा किस प्रकार सर्व धर्म जिसकी शाखा प्रति शाखा तथा उपशाखाएँ हैं। इत्यादि प्रश्नों का यथाक्रम स्पष्ट उत्तरदायी यह शास्त्र है।

इसमें सब धर्मों की जड़ को बतला कर उसकी साधारण; विशेष; असाधारण और आपद्धर्म, ये चार शाखा प्रधान बतलाई गई हैं। पुनः साधारण धर्म की चौबीस शाखा, त्रिगुण भेद से बहत्तर प्रकार कथन की गई है। जिसमें सब प्रकार के दान सब प्रकार के तप, सब प्रकार के कर्म, उपासना और सब प्रकार के ज्ञानों का उल्लेख किया गया है।

इसी प्रकार विशेष धर्म में आर्य्य अनार्य्य जाति का लक्षण, आर्य्य जाति और उसके धर्म का गौरव अर्थात् आर्य्य जाति जगत् की अन्यान्य जातियों की आदि शिक्षक तथा गुरु और आर्य्य धर्म अन्यान्य धर्मों का जनक तथा पालक, एवं आर्य जाति से

अन्यान्य जातियों की उत्पत्ति। आर्य्य भाषा सब भाषाओं की जन्म-दात्री। आर्य और हिन्दू शब्द का निर्णय। वर्ण धर्म का उद्देश्य; ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लक्षण। आश्रम धर्म का उद्देश्य; ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों के लक्षण। कर्म संन्यास, ज्ञान संन्यास, कुटी चक बहूदक आदि, संन्यास के चार भेद; व्यति रेकादि वैराग्य के आठ भेद। ज्ञान वैराग्य हीन संन्यास का निषेध और नारी धर्म इत्यादि विशेष धर्म की शाखाएँ विधान की गई हैं। तथा असाधारण और आपद्धर्म के लक्षण। आपत्काल में मृदु और दारुण उपाय से उपस्ति और विश्वामित्र की भांति प्राणों की रक्षा करना। एवं आपत्काल के बिना "मांसाहार" का=नैतिक, धार्मिक, डाक्टरी और आर्थिक दृष्टि से निषेध। एवं गोरक्षा, हिन्दू धर्म प्रचार; अछूतोद्धार और सर्व धर्मों का निष्कर्ष तथा सब धार्मिक ग्रन्थों का निर्णय इत्यादि समस्त धर्माङ्गों के सहित वेदोक्त हिन्दू धर्म का रहस्य प्रश्नोत्तर रूप सांचे में ढाला गया है, और प्रत्येक विषय पर वेदादि शास्त्रों के प्रमाण भी टिप्पणी में दिये गये हैं, जिससे धर्म विषयक सब प्रकार की शंकाओं का निराकरण मनुष्य स्वयं कर सकता है।

अतः प्रत्येक हिन्दू को यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। विद्यार्थियों के लिये तो यह पाठ्य पुस्तक होना अत्यावश्यक है। तथा अध्यापक और उपदेशकों के लिये भी यह पुस्तक बड़े काम की है। सनातन धर्म की उन्नति के लिये इसका प्रचार करना चाहिये। हिन्दू धर्मावलम्बी राजा, महाराजा और सेठ साहूकार आदि धनाढ्य पुरुषों को यह पुस्तक खरीद कर नगर २ और ग्राम २ में

वितरण करनी चाहिये ! खास कर यह पुस्तक पढ़े लिखे साधु, ब्राह्मण और छात्रों को देनी चाहिये । क्योंकि ये ही हमारेधर्म के रक्षक तथा प्रचारक हैं, यदि ये लोग 'हिन्दू धर्म रहस्य' का प्रचार करेंगे, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा । इस पुस्तक को दुवारा लिखने में तथा छपाने में मुझे जो परिश्रम उठाना पड़ा है, उसको साधारण लोग नहीं जान सकते किन्तु:—

"विद्वानेव विजानाति विद्वज्जन परिश्रमम् ।
नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वी प्रसववेदनाम् ॥"

विद्वान् ही विद्वान् के परिश्रम को समझ सकता है, जैसे बच्चा जनने की भारी पीड़ा को वन्ध्या स्त्री नहीं समझ सकती ।

॥ इति ॥

कृतज्ञता
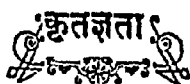
शास्त्रकारों ने मनुष्य के प्रत्येक पाप का प्रायश्चित्त बतलाया है, परन्तु कृतघ्नता पाप का प्रायश्चित्त नहीं कहा है । कारण कि "*कृतघ्ने नाऽस्ति निष्कृतिः*" अर्थात् कृतघ्नता से बढ़ कर संसार में और कोई पाप नहीं है, इसलिये इसका प्रायश्चित्त भी नहीं है । अतः इस महा पाप से बचने के लिये विद्वानों को सदा कृतज्ञ रहना चाहिये । वेदान्त शास्त्र में लिखा है कि:—

"यावदायुस्त्रयो वंद्या वेदान्तो गुरु रीश्वरः ।
आदौ ज्ञान प्रसिद्धयर्थं कृतघ्नत्वापनुत्तये ॥"

जब तक मनुष्य के शरीर की आयु है तब तक, वेद गुरु और ईश्वर ये तीनों नमस्कार करने योग्य हैं, क्योंकि इन्हीं की कृपा से मनुष्य ज्ञानवान् होता है । अतः प्रथम ज्ञान प्राप्ति के लिये, "वेद, गुरु और ईश्वर का सेवन" कर्त्तव्य है, और ज्ञान के अनन्तर कृतघ्नता दोष की निवृत्ति के लिये उन्हें आजीवन सेवन करना चाहिये ।

इस शास्त्र आज्ञा को शिरोधार्य्य मान कर गुरु ईश्वर और वेद के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ ।

गुरु के प्रति ।

जिन श्री गुरु दयालु ने मुझ जैसे अज्ञ मनुष्य को सार्वभौम सनातन धर्म का रहस्य समझा कर कृतार्थ किया है ऐसे श्री १०८ श्री श्री सुखराम जी महाराज जो कि मेरे परम गुरुदेव हैं उनका मैं सदैव ऋणी हूँ अर्थात् सद्गुरु का ऋण मैं कोटि कल्प तक भी शोधन* करने में असमर्थ हूँ । अतः श्री गुरु महाराज ही मुझको अपने ऋण से मुक्त करने में समर्थ हैं ।

---

* एक मप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं निवेदयेत् ।
पृथिव्यां नास्तितद् द्रव्यं यद्दत्वाऽणनृणी भवेत् ॥

ईश्वर के प्रति।

गद्य अथवा पद्य रूप शास्त्र रचना वही कर सकता है जिसमें आठ बातें भली प्रकार से घटती हों। यथा:—

"स्वास्थ्यं प्रतिभाभ्यासो भक्तिर्विद्वत्कथा बहुश्रुतता:।
स्मृतिर्दार्ढ्यमनिर्वेदश्च मातरोऽष्टौ कवित्वस्य॥"

स्वास्थ्य, प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, विद्वत्कथा, बहुश्रुतता, स्मृति, दृढ़ता और अनिर्वेद ये आठ बातें कवित्व की जननी हैं। इन आठों में स्वास्थ्य सब में मुख्य है क्योंकि:—

"धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूल मुत्तमम्॥"

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सबका मूल कारण स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य के विना मनुष्य कुछ भी पुरुषार्थ नहीं कर सकता, यह प्रकृति राज्य का नैसर्गिक नियम है। परन्तु—ईश्वर राज्य की महिमा बड़ी विचित्र और अचिन्त्य है। यदि ईश्वर चाहे तो मुरदे में भी जान डाल कर उससे अघटित घटना करवा सकता है। जैसा कि शास्त्र में लिखा है—

"अघटित घटितं घटयति सुघटित घटि तानि दुर्घटी कुरुते।
विधिरेव तानि घटयति यानि पुमान्नैव चिन्तयति॥"

अर्थात् परमात्मा असंभव को संभव और सम्भव को असम्भव कर देता है। जिसकी घटना को मनुष्य स्वप्न में भी नहीं जान सकता।

"मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि अस्वास्थ्य दशा में पड़े हुये मुझ अयोग्य व्यक्ति को ईश्वर ने, अपूर्व उत्साह और धैर्य्य तथा आत्मिक-बल और प्रतिभा आदि प्रदान कर इस महान् धार्मिक ग्रन्थ की रचना के लिये प्रेरित किया"।

"आज तीन वर्ष से मेरा शरीर कठिन बवासीर की बीमारी का शिकार हो रहा है। मैंने कई डाक्टर, वैद्य और हकीमों से इलाज कराया; परन्तु किसी से आराम न हुआ। आखिर तंग आकर एक डाक्टर के कहने से "आपरेशन" करवाया जिसका परिणाम यह हुआ कि मर्ज आगे से भी सौगुणा अधिक बढ़ गया। पहले मैं एक दो घंटे तक सुख से बैठ सकता था। परन्तु आपरेशन के बाद तो दश पन्द्रह मिनट भी बैठना कठिन हो गया। क्या मालूम कोई नश या मांस का हिस्सा ज्यादा कट गया जिससे बैठा नहीं जा सकता। इसके सिवाय रात दिन पड़ा रहने से कफ़, वादी, बदहज्मी, कब्जी, जलन, शिर और कमर में दर्द इत्यादि और भी अनेक बीमारियों का आक्रमण होने लगा।"

तात्पर्य ऐसी भयंकर स्थिति में किस प्रकार मनुष्य में प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, दृढ़ता तथा स्मृति आदि आठ बातें रह सकती हैं, किन्तु परमेश्वर का जिस पर पूर्ण अनुग्रह हो वह सब बातों को मस्तिष्क में रखता हुआ, इससे भी अधिक व्यथाओं का सामना कर के व्यग्र न होकर, धैर्य्य और ज्ञान के द्वारा अपना आनन्द-मय जीवन शान्ति के साथ व्यतीत करता है और अन्य मनुष्यों के लिये भी श्रेय का सोपान बना लेता है। यह ईश्वर की पूर्ण कृपा ही का फल समझता हूँ।

सारांश यह है कि-जिस भक्तवत्सल भगवान् की असीम कृपा ने मुझ व्याधित एवं धर्मोच्चारण रूप वाणी से रहित 'मूक' (गूंगे) मनुष्य को धार्मिक ग्रन्थ की रचना में प्रवृत्त किया है तथा जिनकी अपूर्व कृपा ने मुझ वक्तृता रूप पैरों से हीन पङ्गु को "हिन्दू धर्म रहस्य" ग्रन्थ रूपी महा पर्वत के उल्लंघन अर्थात् निर्विघ्न समाप्त करने में समर्थ किया है ऐसे कृपा सिन्धु श्री नारायण के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता किस प्रकार प्रकट करूं। अतः उस सर्वात्मा, सर्वान्तर्यामी परमात्मा के चरण कमलों में यह पुस्तक समर्पण करके मैं वारम्वार साष्टांग प्रणाम करता हूँ।

शास्त्र और लेखकों के प्रति।

जिन वेदादि शास्त्रों और लेखों से इस ग्रन्थ में लेख उद्धृत किये गये हैं, उन शास्त्रों और लेखकों के लिये भी मैं विशेष उपकृत हूँ। तथा इस ग्रन्थ का संशोधन पंडित दिगम्बरानन्द और पंडित देवीप्रसाद भट्ट ने बड़े उत्साह और प्रेम से किया है। अतः उक्त महानुभावों का भी मैं हार्दिक कृतज्ञ हूँ। एवं मेरे कथनानुसार इस पुस्तक की नक़ल अध्यापक काशीराम टाक ने की है। अतः उस प्रिय भक्त की सेवा को भी मैं भूल नहीं सकता।

इनके सिवा और भी जिस-जिसने मुझे इस पुस्तक के लिखने तथा छपाने में सहायता दी है, उन सब प्रियतमों को आशीर्वाद देकर अंत में गुणग्राही सज्जनों से निवेदन करता हूँ

कि—मनुष्य प्रकृति के अनुसार यदि इस पुस्तक में किसी प्रकार की त्रुटियाँ गलती रह गई हों तो पाठकगण सुधार कर पढ़ेंगे, और इसमें आक्षेप न करेंगे, क्योंकि मैं न पंडित हूँ, न कवि हूँ न किसी भाषा का प्रसिद्ध लेखक हूँ। मैं जानता हूँ कि इस पुस्तक को लिख कर मैंने अनधिकार चेष्टा की है, तथापि विद्वान् लोग इस बाल-प्रयास को बाल बोध समझ कर मेरी धृष्टता को क्षमा करेंगे।

"गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥"

चलने वाले का प्रमाद से कहीं पैर फिसल ही जाता है, दुर्जन उस पर हंसते हैं और सज्जन उसको संभालते हैं।

इति श्री स्वामी अचलराम विरचित हिन्दू धर्म-
रहस्यान्तर्गत भूमिका समाप्त।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

मङ्गलं लेखकानां च पाठकानां च मङ्गलम्।
मङ्गलं सर्व लोकानांभूयो भूयोऽस्तु मङ्गलम् ॥

भवदीय—

स्वामी-अचलराम,

॥ ॐ तत्सत् ॥

अथ

हिन्दू धर्म-रहस्य।

(प्रश्नोत्तरावली)

श्री स्वामी अचलराम निर्मित-प्रारभ्यते।

मंगलाचरण।

यं पृथग् धर्म्म चरणाः प्रथग् धर्म्म फलैषिणः।
पृथग् धर्म्मैः समर्चन्ति तस्मै धर्म्माऽऽत्मने नमः॥
(म० भा०)

पृथक् पृथक् (भिन्न २) धर्म फल की इच्छा करने वाले मनुष्य जिसको पृथक् पृथक् धर्म के आचरण से उपासना करते हैं, उस धर्म स्वरूप भगवान् को नमस्कार है।

धर्म शब्दार्थ।

प्रश्न—धर्म किसे कहते हैं अर्थात् धर्म शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर—धर्म शब्द "धृ" धातु से बना है, जिसका अर्थ धारण करना (*'धराति धारयति वा विश्वमिति धर्मः'*। *'ध्रियते सन्मार्गतया लोके रिति वा धर्मः'*।) धारण करने से *धर्म ऐसा कहते हैं, धर्म ही सब प्रजा (संसार) का धारण करने वाला है, जो धारणा से युक्त है वह धर्म है यह निश्चित अर्थ है।

प्रश्न—बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान, यहूदी, पारसी, इत्यादि धर्म पन्थ इस संसार में प्रचलित हैं। यह उपर्युक्त धर्म-शब्दार्थ किस सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता है?

उ०—यह धर्म शब्दार्थ सनातन से संबंध रखता है अर्थात् इस को सनातन धर्म, आर्य्य धर्म तथा हिन्दू धर्म कहते हैं।

प्रश्न—सनातन धर्म किसे कहते हैं?

उ०—जो धर्म अनादि काल से चला आता है तथा संसार के सब धर्म मत सम्प्रदाय पन्थों का आदि मूल कारण है। अर्थात् जिसके अस्तित्व से समस्त धर्मों का अस्तित्व है। "जो धर्म अन्य धर्मों से द्वेष न करे अथवा अन्य धर्मों को कभी बाधा न दे और सब को यथाधिकार उभय

---

* धारणाद्धर्ममित्याहु धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारण संयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥
(म० भा० कर्ण० ६९-५८)

विध अभ्युदय प्रदान करे और सब को निःश्रेयस (मोक्ष) का मार्ग बतावे वही *सनातन धर्म है यही उपनिषद् है।"
'एवं समष्टि व्यष्टि रूप से सृष्टि के धारण करने वाली जो ईश्वर की नियामिका शक्ति है, उसी को सनातन †धर्म कहते हैं'।

प्रश्न—सनातन धर्म के कितने पाद अर्थात् कितनी शाखाएँ हैं?

उ०—सनातन धर्म के चार ‡पाद हैं यथा—साधारण, विशेष, असाधारण और आपद्धर्म ये चार पाद मुख्य (शाखाएँ) हैं

साधारण धर्म—पाद।

प्रश्न—साधारण धर्म की प्रधान शाखाएँ और उसकी प्रतिशाखाएँ कितनी हैं?

---

* अन्य धर्म्मान्न यो द्वेष्टि बाधते वा कदाचन।
यथायोग्यन्तु सर्वेभ्यो द्विविधाऽभ्युदय प्रदः॥
निःश्रेयसस्य चाऽध्वानं यस्तु दर्शयतेऽखिलान्।
धर्म्मः सनातनो नूनमियं ह्युपनिषन्मता॥
(धी० गी० ४। ५३। ५४)

† समष्टि व्यष्टि रूपाभ्यां सृष्टेः सन्धारिका मम।
शक्तिर्नियामिका सैव ध्रुवं धर्म्मः सनातनः॥
(शं० गी० १। ६०)

‡ तत्सनातन धर्मस्य पादाश्चत्वार आसते।
साधारण विशेषौ हि तथाऽसाधारणपदौ॥
(शं० गी० १। ६१)

उ०—साधारण धर्म की मुख्य तीन शाखा हैं और प्रतिशाखाएँ (२४) चौबीस तथा त्रिगुण भेद से (७२) बहत्तर प्रकार की हैं।

प्रश्न—साधारण धर्म की मुख्य तीन शाखाएँ कौनसी हैं?

उ०—दान, तप और यज्ञ ये तीन प्रधान धर्म शाखाएँ मनुष्य मात्र को *पवित्र करने वाली हैं।

दान-धर्म।

प्रश्न—दान धर्म की कितनी शाखाएँ हैं?

उ०—†अर्थ दान, विद्यादान और अभय दान के त्रिगुणात्मक होने से अर्थात् सत्व, रज और तमोगुण के भेद से दान धर्म की तीनों प्रति शाखाएँ हैं।

अर्थ-दान।

प्रश्न—अर्थदान कितने प्रकार का होता है?

---

* यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।
(भ० गी० १८)

त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दान मिति श्रुतिः॥
(छान्दोग्य उ० २-२३)

† अथार्थाऽभयदानानि देवाः! त्रैगुण्य योगतः।
दानस्य प्रतिशाखाः स्युर्नवधा नात्र संशयः॥
(श० गी० ७।१२८)

उ०—अन्न, धन, वस्त्र, भवन, भूमि, सोना चांदी, गो इत्यादि अनेक प्रकार के अर्थ दान हैं।

विद्या-दान ।

प्र०—विद्या दान कितने प्रकार का है ?

उ०—शरीर, मन, वाणी, और अर्थादि के द्वारा विद्योन्नति के लिये जो कुछ कार्य किया जाय वह सब विद्या दान है । यथा—विद्यालय स्थापन करना, विद्योन्नतिकारी कला कौशलादि यन्त्रालय खोलना, पुस्तकालय स्थापन करना, पुस्तक प्रकाशित करना तथा प्रणयन करना एवं देशोन्नतिकारी धार्म्मिक पुस्तकें छपा कर मुफ्त बांटना तथा मोल लेके दान करना एवं विना वेतन पढ़ाना इत्यादि विद्या दान हैं।

अभय-दान।

प्रश्न—अभय दान कितने तरह का है ?

उ०—अभय दान दो प्रकार का है यथा-किसी प्राणी को कोई विना अपराध जान से मारने का भय दिखा कर उसको मारता हो, उसे तन मन धन से वचाकर उस भय से निर्भय कर देना, यह एक प्रकार का अभय दान है। तथा वारम्वार जन्म मृत्यु रूपी महा भय से भयभीत मनुष्य को ज्ञानोपदेश देकर उसका जन्म मृत्यु रूपी भय मिटा कर उसे सदैव के लिये निर्भय कर देना, यह सर्वोत्तम दान है। अर्थात् सर्वदान उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं।

पूर्वोक्त सर्व दान त्रिगुण भेद से तीन २ प्रकार के होते हैं। अतः उनके लक्षण तथा फल कथन किये जाते हैं।

सात्विक-दान।

प्रश्न—सात्विक दान का लक्षण और उसका फल क्या है?

उ०—दान देना मनुष्य का कर्त्तव्य है, ऐसे शुद्ध भाव से जो दान यथायोग्य देश, काल और पात्रापात्र को विचार के प्रत्युपकार की इच्छा न रखकर अर्थ, विद्या तथा अभयदान दिया जाय, वह सात्विक दान* है। सात्विक दान का फल अन्तःकरण शुद्धि द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

राजस-दान।

प्रश्न—राजस दान का लक्षण और उसका फल क्या है?

उ०—जो दान क्लेश पूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से अथवा फल को उद्देश्य रख कर, अर्थ विद्या तथा अभय दानादि दिया जाय, वह राजस† दान कहा गया है। राजस दान का फल इह लोक तथा परलोक में सुख और सम्पत्ति आदि ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

---

* दातव्यमितियद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्॥
(गी० १७-२०)

† यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥

तामस-दान।

प्रश्न—तामस दान का लक्षण और उसका फल क्या है?

उ०—जो दान बिना सत्कार किये अथवा तिरस्कार पूर्वक अयोग्य देश काल में, कुपात्रों के लिये, अर्थ, विद्या तथा अभय दान दिया जाय, वह तामस* दान कहलाता है। तामस दान से किसी फल की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् तामस दान निष्फल है। अतएव मनुष्य को आत्म शुद्धि के लिये सात्विक दान करना चाहिये।

इति श्री स्वामी अचलराम विरचित हिन्दू धर्म रहस्य अन्तर्गत दान धर्म की नौ शाखाएँ समाप्त।

तप-धर्म।

प्रश्न—तप धर्म की कितनी शाखाएँ हैं?

उ०—शारीरिक, वाचनिक और मानसिक तप के त्रिगुणात्मक होने से तपोधर्म की नौ† प्रति शाखाएँ हैं।

---

* अदेशकालेयद्दान मपात्रेभ्यश्चदीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥
गीता,

† तपोऽपि त्रिविधं ज्ञेयं काय वाणी मनोभवम्।
त्रैगुण्य योगे नास्यापि प्रति शाखा नवासवे॥
(श्रा० गी० ७। १२६)

शारीरिक-तप।

प्रश्न—शारीरिक तप के क्या लक्षण हैं ?

उ०—देवता, ब्राह्मण, गुरु, (माता-पिता, आचार्य) और विद्वानों का पूजन (सेवा सत्कारादि) करना एवं पवित्रता रखना, सरल स्वभाव रखना, ब्रह्मचर्य पालन करना, हिंसा न करना ये सब शरीर संबंधी तप* के लक्षण हैं।

वाचनिक-तप।

प्रश्न—वाचनिक तप के क्या लक्षण हैं ?

उ०—प्रिय, हितकारक और सत्य बोलना तथा वेदादि शास्त्रों को पढ़ना, जप करना, इत्यादि वाचनिक तप† के लक्षण हैं।

मानसिक-तप।

प्रश्न—मानसिक तप के क्या लक्षण हैं ?

उ०—मन को प्रसन्न रखना, सौम्य स्वभाव रखना जरूरत से ज्यादा न बोलना, तथा चित्त को दमन करना, अपने

---

* देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजनंशौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तपउच्यते॥

(गी० १७)

† अनुद्वेग करं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

भावों को शुद्ध रखना, ये सब मानसिक* तप के लक्षण हैं। उपर्युक्त तीनों तप त्रिगुण भेद से एक२ तीन २ प्रकार के होते हैं।

सात्विक-तप।

प्रश्न—सात्विक तप के क्या लक्षण हैं?

उ०—फल की इच्छा न रखने वाले निष्कामी पुरुषों द्वारा उत्तम भाव से किये हुए पूर्वोक्त तीनों प्रकार के तपों को सात्विक† तप कहते हैं।

राजस-तप।

प्रश्न—राजस तप के क्या लक्षण हैं?

उ०—जो तप सत्कार, मान और अपनी पूजा के लिये एवं पाखण्ड पन से किये हुए, तीनों प्रकार के तपों को राजस‡ तप कहते हैं।

---

* मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धि रित्यतत्तपो मानस मुच्यते॥

† श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत त्रिविधं नरैः।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्विकं परिचक्षते॥

‡ सत्कार मान पूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्॥

(गीता १७)

तामस-दान।

प्रश्न—तामस तप के क्या लक्षण हैं?

उ०—मूर्खता से जिद् पकड़ के तथा अपने शरीर मन वाणी को पीड़ा देके अथवा दूसरे को नुकसान पहुँचाने की भावना से किये हुए, पूर्वोक्त तीनों प्रकार के तपों को तामस* तप कहते हैं।

प्रश्न—सात्त्विक तप का फल क्या है?

उ०—सात्त्विक तप से आयु, विद्या, यश, बल और ज्ञान की वृद्धि होती है।

प्रश्न—राजस तप का फल क्या है?

उ०—राजस तप का फल इह लोक तथा परलोक में धन, जन, हाथी, घोड़े, राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

प्रश्न—तामस तप का फल क्या है?

उ०—तामस तप का फल इह लोक तथा परलोक में केवल क्लेश मात्र ही फल होता है अर्थात् निष्फल है।

अतएव मनुष्य को आत्मोन्नति के लिये सात्त्विक तप करना चाहिये।

इति श्री स्वामी अचलराम विरचित हिन्दू धर्म-रहस्य अन्तर्गत तप धर्म की नौ शाखाएँ समाप्त।

---

* मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडयाक्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थंवातत्तामसमुदाहृतम्॥

यज्ञ-धर्म

प्र०—यज्ञ धर्म की कितनी शाखाएँ हैं ?

उ०—यज्ञ धर्म की मुख्य तीन शाखाएँ हैं यथा—कर्मयज्ञ, उपासना यज्ञ और ज्ञान यज्ञ ।

कर्म-यज्ञ ।

प्र०—कर्म यज्ञ की प्रधान शाखाएँ और उसकी प्रति शाखाएँ कितनी हैं ?

उ०—कर्म यज्ञ की मुख्य छः शाखाएँ हैं यथा—(१) नित्य कर्म (२) नैमित्तिक कर्म (३) काम्य कर्म (४) अधिभूत कर्म (५) आधिदैविक कर्म और (६) आध्यात्मिक कर्म ये षट् कर्म सत्त्व, रज और तमोगुण के भेद से एक २ तीन तीन प्रकार के होते हैं इस रीति से कर्म यज्ञ की *अठारह प्रतिशाखाएँ हैं ।

---

* प्रतिशाखा अनेकाः स्युर्यज्ञ शाखा समुद्भवाः ।
काम्याध्यात्माधिदैवाधि भूत नैमित्त नित्यकाः ॥
कर्म्म यज्ञ प्रशाखाया भेदास्त्रैगुण्य योगतः ।
त एवाष्टादशास्या हि प्रतिशाखा मनोहराः ।

(श० गी० ७, १३०, ३१)

नित्य-कर्म ।

प्र०—नित्य कर्म कौनसे हैं ?

उ०—जिन कर्मों को वेद शास्त्र ने प्रतिदिन करने को कहा है, वे नित्य कर्म हैं यथा—"सन्ध्या, स्नान*, जप, होम, स्वाध्याय, देवताओं का पूजन, अतिथि की सेवा तथा वैश्वदेव ये छः कर्म प्रतिदिन करने चाहिये। सन्ध्या, स्नान, जप ये तीनों अङ्गाङ्गि रूप से एक हैं।

प्र०—संध्योपासना प्रतिदिन कितनी वार करनी चाहिये ?

उ०—श्रुति ने †त्रिकाल संध्या करने की आज्ञा दी है। अर्थात् अपनी शक्ति के अनुसार त्रिकाल संध्या, स्नान, तर्पण, मार्जन, तथा उपस्थान और पञ्चयज्ञ मनुष्य को आजीवन करते रहना चाहिये।

प्रश्न—पञ्च महायज्ञ कौन से हैं ?

उ०—ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, भूत यज्ञ, नृ यज्ञ ये पञ्च महायज्ञ हैं। (१) वेदादि शास्त्रों को पढ़ना पढ़ाना अथवा सुनना सुनाना तथा जपादि करना ये सब ब्रह्म यज्ञ हैं।

---

* सन्ध्या स्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट् कर्माणि दिने दिने ॥
(प० स्मृ० १ । ३९)

† त्रि सन्ध्यं शक्तितः स्नानं तर्पणं मार्जनन्तथा ।
उपस्थानं पञ्चयज्ञान्कुर्यादामरणान्तिकम् ॥
(शाठ्या उ० श्रु० ११)

(२) भोजन के समय प्रथम भोज्य वस्तु का अग्नि में होम करना इसको देव यज्ञ कहते हैं। (३) उन्हीं भोज्य पदार्थों को पितरों के लिये समर्पण करना, इसको पितृ यज्ञ कहते हैं। (४) तथा उसी अन्न फलादि के कुछ ग्रास निकाल कर पशु पक्षी आदि को देना इसको भूतयज्ञ कहते हैं। (५) एवं अतिथि को भोजन कराना इसको नृ यज्ञ कहते हैं ये पञ्च महायज्ञ* नित्य करने चाहियें।

प्रश्न—नित्य कर्म करने से क्या फल मिलता है ?

उ०—नित्य कर्म करने से कोई विशेष फल की प्राप्ति नहीं होती परन्तु इसके न करने से पाप अवश्य लगता है अर्थात् पाप की निवृत्ति ही नित्य कर्म का फल समझा जाता है।

प्रश्न—नित्य कर्म के न करने से मनुष्य को पाप क्योंलगता है ?

उ०—संसार में मनुष्य को अपना जीवन धारण करने के लिये प्रति दिन हज़ारों प्राणियों की हत्या करनी पड़ती है, विना हिंसा के मनुष्य का जीवन संग्राम संसार में चल नहीं सकता। अर्थात् सोने जागने में, चलने फिरने में, उठने बैठने में, खाने कमाने में और श्वास, प्रतिश्वास में हज़ारों प्राणियों की हिंसा होती है तथा-गृहस्थों के

---

* अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम्॥

(मनु० ३-७०)

पांच स्थानों* में भी प्रति दिन जीव हिंसा होती है । जैसे- चूल्हा, चक्की, झाडू, ऊखली (हमाम दस्ता शिलादि) जल पात्र इन पांच चीजों को काम में लाने से जीव हिंसा होती है । अतः इन हिंसाकृत पापों से मुक्त होने के अर्थ महर्षियों ने गृहस्थों के लिये पञ्च महायज्ञ नियत किये हैं उन को प्रति दिन नियम से करना चाहिये । मनु जी कहते हैं जो मनुष्य पञ्च यज्ञ नहीं करता वह धौंकनी के समान श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं है

इति नित्य कर्म ।

नैमित्तिक-कर्म ।

प्र०—नैमित्तिक कर्म कौनसे हैं ?

उ०—जिन कर्मों के करने का सदा विधान नहीं किंतु किसी निमित्त को लेकर वेद शास्त्र ने कथन किये हों, वे नैमित्तिक कर्म हैं यथा—षोडश संस्कार तथा वृद्धों के आगमन से उत्थान और श्राद्ध इत्यादि ।

---

* पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोद कुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ।
पञ्चक्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥

(मनु ३, ६८, ६९)

षोडश-संस्कार।

प्रश्न—सोलह संस्कार कौनसे हैं ?

उ०—१—गर्भाधान, २—पुंसवन, ३—सीमन्त, ४—जात कर्म, ५—नाम करण, ६—निष्क्रमण, ७—अन्नप्राशन, ८—चूड़ा कर्म, ९—कर्णवेध, १०—उपनयन, ११—वेदारम्भ, १२—समावर्तन, १३—केशान्त, १४—विवाह, १५—विवाहाग्नि परिग्रह, और १६—त्रेताग्नि संग्रह। ये सोलह *संस्कार हैं।

प्रश्न—गर्भाधान संस्कार किस समय किया जाता है ?

उ०—विवाह संस्कार से कम से कम तीन दिन के बाद अथवा ज्यादा से ज्यादा सात वर्ष ब्रह्मचर्य रखने के पश्चात् गर्भाधान किया जाता है।

प्रश्न—पुंसवन किस समय किया जाता है ?

उ०—गर्भाधान से दूसरे वा चौथे महीने में होता है।

प्रश्न—सीमन्त किस समय किया जाता है ?

---

* गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जात कर्मच।
नाम क्रिया निष्क्रमोऽन्नाशनं वपनं क्रिया॥
कर्णो वेधो व्रतादेशो वेदारम्भ क्रिया विधिः।
केशान्तः स्नान मुद्वाहो विवाहाग्नि परिग्रहः॥
त्रैताग्नि संग्रहश्चेति संस्काराः षोडशस्मृताः॥
(व्यास स्मृ० १। १३। १४। १५)

उ०—गर्भाधान से आठवें महीने में होता है।

प्रश्न—जात कर्म किस समय किया जाता है?

उ०—जन्म समय में नालच्छेदन से पहले।

प्रश्न—नामकरण किस समय किया जाता है?

उ०—जन्म से ग्यारहवें दिन।

प्रश्न—निष्क्रमण किस समय किया जाता है?

उ०—जन्म से चौथे महीने में सूर्य का दर्शन।

प्रश्न—अन्न प्राशन किस समय किया जाता है?

उ०—जन्म से आठवें महीने में।

प्रश्न—चूड़ा कर्म किस समय किया जाता है?

उ०—जन्म से पाँच वर्ष पश्चात्।

प्रश्न—उपनयन किस समय किया जाता है?

उ०—गर्भ वा जन्म से ब्राह्मण का आठवें वर्ष, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष और वैश्य का बारहवें वर्ष में उपनयन करना चाहिये।

प्रश्न—वेदारम्भ किस समय किया जाता है?

उ०—उपनयन के पश्चात्।

प्रश्न—समावर्तन किस समय किया जाता है?

उ०—२४ वर्ष की उम्र में।

प्रश्न—विवाह किस समय करना चाहिये।

उ०—२५ वर्ष की उम्र में।

प्रश्न—गृहस्थाश्रम किस समय किया जाता है?

उ०—२५ वर्ष की उम्र में।

प्रश्न—वानप्रस्थ किस समय धारण किया जाता है ।

उ०—५० वर्ष की उम्र में ।

प्रश्न—संन्यास किस समय धारण किया जाता है ?

उ०—७५ वर्ष की उम्र में ।

प्रश्न०—अन्त्येष्टि किस समय किया जाता है ?

उ०—देहान्त के पश्चात् ।

प्रश्न—संस्कार कर्म करने से क्या फल होता है ।

उ०—वेद* में कहे हुए षोडस संस्कार रूपी कर्म करने से शरीर तथा अंतःकरण की शुद्धि होती है । अंतःकरण शुद्ध होने से ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञान होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है । अतः संस्कार अवश्य करने चाहिये ।

इति षोडश संस्कार ।

(उत्थान-कर्म)

प्रश्न—उत्थान रूप नैमित्तिक कर्म कौन सा है ?

उ०—अपने से जो वृद्ध पुरुष हो, उसके आगमन से मनुष्य को उत्थान (खड़ा) होकर उसका अभिवादनादि से सत्कार करना, इसको उत्थान रूप नैमित्तिक कर्म कहते हैं ।

---

* वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादि द्विजन्म नाम् ।
कार्यः शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्यचेह च ॥

(मनु० २ । २६)

सारांश यह है कि संसार में वृद्ध पुरुष सात प्रकार के होते हैं यथा—अवस्था वृद्ध, जाति वृद्ध, धन वृद्ध, आश्रम वृद्ध, विद्या वृद्ध, धर्म वृद्ध और ज्ञान वृद्ध ये सब पूर्व पूर्व से उत्तरोत्तर उत्तम हैं इनमें ज्ञान वृद्ध *सर्वोत्तम पूजनीय है। तात्पर्य-अपने से श्रेष्ठ हों उनके आने पर पुरुष को खड़ा होकर उन्हें नमस्कारादि करना चाहिये क्योंकि-युवा के सामने वृद्ध के आने पर युवा के प्राण ऊर्द्ध उत्क्रमण करते हैं, उसको प्रत्युत्थान और अभिवादनादि से वह पुनः प्राप्त किया करता है। जो पुरुष अभिवादन करने वाला है और नित्य वृद्धों की सेवा करता है, उसके आयु, विद्या, यश और बल ये चारों बढ़ते हैं ऐसा मनु स्मृति† में लिखा है।

इति नैमित्तिक कर्म।

---

* धन वृद्धा वयो वृद्धा विद्या वृद्धास्तथैव च।
ते सर्वेज्ञान वृद्धस्य किंकराः शिष्य किंकराः॥

(मैत्रे उ० २-श्रुति २४)

† ऊर्द्ध प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रति पद्यते॥
अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोप सेविनः।
चत्वारि संपवर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

(मनु २-१२०-१२१)

(काम्य कर्म)

प्रश्न—काम्य कर्म किसे कहते हैं ?

उ०—किसी विशेष कामना की पूर्ति के निमित्त वेद ने विधान किया जो कर्म वह काम्य कर्म है। जैसे पुत्र कामना के लिये पुत्रेष्टि याग, वृष्टि कामना के लिये कारीरी याग तथा स्वर्ग कामना के लिये अग्नि होत्रादि याग इत्यादि काम्य कर्म हैं।

(आधिभौतिक कर्म)

प्रश्न—आधिभौतिक कर्म कौनसे हैं ?

उ०—दीन, अनाथ, दरिद्री, रोगी, आदि दुःखी प्राणियों को अन्न, वस्त्र, औषधि आदि देना तथा उनके लिये अनाथालय स्थापन करना, औषधालय खोलना, गौशालादि बनवाना इत्यादि आधिभूत कर्म हैं।

(आधि दैविक-कर्म)

प्रश्न—आधि दैविक कर्म किसे कहते हैं ?

उ०—जब मनुष्य को दुष्ट कर्मों के संस्कार आकर क्लेश देते हैं, तब उनको निवृत्त करने के लिये जप, होम, पूजादि करना आधिदैविक कर्म हैं।

(आध्यात्मिक-कर्म)

प्रश्न—आध्यात्मिक कर्म कौन से हैं ?

उ०—स्वधर्म और स्वदेशोपकारक कर्म, तथा ज्ञान विस्तारकारी कर्मों को आध्यात्मिक कर्म कहते हैं।

प्रश्न—सात्विक कर्म के क्या लक्षण हैं ?

उ०—अहंकार और राग द्वेष रहित तथा फल की इच्छा के बिना किये हुए शास्त्रोक्त कर्म सात्विक* कहे जाते हैं ।

प्रश्न—राजस कर्म के क्या लक्षण हैं ?

उ०—अहंकार और फल की इच्छा से एवं बहुत कष्ट उठाकर किये हुए कर्म राजस† कहे जाते हैं ।

प्रश्न—तामस कर्म के क्या लक्षण हैं ?

उ०—जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न विचार के, केवल अज्ञान से किये जायँ, वह तामस‡ कर्म जानना चाहिये ।

इति श्री स्वामी अचलराम विरचित हिन्दूधर्म रहस्य अन्तर्गत कर्मयज्ञ की अष्टादश शाखाएँ समाप्त ।

---

* नियतं संगरहितमराग द्वेषतः कृतम् ।
अफल प्रेप्सुनाकर्म यतत्सात्विकमुच्यते ॥
(भ० गी० १८)

† यत्त कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥
(भ० गी० १८)

‡ अनुबंधं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म तत्तामसमुदाहृतम् ॥
(भ० गी० १८)

(उपासना यज्ञ)

प्रश्न—उपासना यज्ञ की मुख्य शाखाएँ और उसकी प्रति शाखाएँ कितनी हैं?

उ०—उपासना यज्ञ बहुत विस्तृत है, इसकी निम्नलिखित शाखाएँ हैं।

यथा—आसुरी उपासना, ऋषि देवता और पितृ उपासना, अवतारोपासना, पंचसगुण ब्रह्मोपासना और निर्गुण ब्रह्मोपासना, ये पांच भक्ति सम्बन्धी भेद हैं। तथा योग के अनुसार मन्त्र, हठ, लय और राज ये चार योग सम्बन्धी उपासना के भेद हैं। इस प्रकार से इन्हीं नौ भेदों के त्रिगुणात्मक होने से उपासना की सत्ताईस* प्रति शाखाएँ हैं।

---

* पितृ देवर्षि वृन्दानामवतार गणस्य च।
पञ्चानां सगुण ब्रह्म-रूपाणां निर्गुणस्य च॥
ब्रह्मणश्चासुरौघाणामुपास्तेः पञ्च भक्तितः।
मन्त्रो हठो लयो राजा एते योगेन च ध्रुवम्॥
अस्या भेदाश्च चत्वारो भेदा एवं नवासते।
एते भेदा नवै वाहो देवाः! त्रैगुण्य योगतः॥
उपास्तेः प्रतिशाखाः स्यु सङ्ख्यया सप्तविंशतिः।

(श० गी० ७।१३२।१३३।१३४)

आसुरी उपासना

(कनिष्ठ उपासना)

प्रश्न—आसुरी उपासना कौनसी है ?

उ०—क्षुद्र-देव, यक्ष, राक्षस तथा प्रेतादि का आराधन करना ।

प्रश्न—देव, ऋषि और पितृ उपासना करना तो ठीक है परंतु निकृष्ट असुर प्रेतादिकों की उपासना करना तो सर्वथा अनुचित है ?

उ०—प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति स्वभावतः भिन्न २ प्रकार की होती है। अतः जिसकी जैसी प्रकृति है उसी के अनुसार उसका आहार, व्यवहार तथा इष्ट उपासना होती है। गीता शास्त्र* में लिखा है कि—"सात्विक प्रकृति वाले मनुष्य देवताओं को पूजते हैं, राजस प्रकृति वाले यक्ष राक्षसों को पूजते हैं और तामस स्वभाव वाले भूत प्रेतादिकों की उपासना करते हैं।"

तात्पर्य यह है कि—प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति स्वभावतः निम्नाभिमुखिनी है, उपासना उस निम्न गामिनी प्रकृति की गति को बदल कर ऊपर की ओर ले जाने के लिये विधि बतलाती है। परन्तु स्वाभाविक प्रकृति एकाएक ऊपर नहीं जा सकती। इसी

---

* यजन्ते सात्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूत गणांश्चान्ये यजन्ते तामसाजनाः ॥
(भगवद् गीता १७-४)

कारण उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ अधिकारी भेद से उपासना के विविध अङ्ग बताये गये हैं। जिनके द्वारा साधक क्रमशः अपनी प्रकृति को सात्विक बनाता हुआ ऊपर (उच्च कोटि उपासना) की ओर जा सकता है। अतः राजस और तामस प्रकृति वाले मनुष्यों के लिये असुर प्रेतादिकों का आराधन भी शास्त्र में बताया गया है।

देवऋषि पितृ उपासना।

(मध्यम-उपासना)

प्रश्न—देवता, ऋषि और पितृगण कितने प्रकार के होते हैं?

उ०—नित्य नैमित्तिक भेद से दो प्रकार के होते हैं।

प्रश्न—नित्य देवता कितने और नैमित्तिक देवता कितने हैं?

उ०—अष्टवसु, द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र इन्द्र और प्रजापति ये तैंतीस देवता* नित्य हैं। और नैमित्तिक देवता, तैंतीस कोटि अथवा असंख्य हैं।

प्रश्न—अष्ट वसुओं के नाम क्या हैं?

उ०—धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ये अष्टवसुओं के नाम महाभारत में लिखे हैं।

प्रश्न—द्वादशादित्यों के नाम क्या हैं?

---

* वसवो देवताः रुद्रो देवताः। आदित्या देवताः। त्रयस्त्रिंशाः सुराः॥ (यजुर्वेद० १४।२०)

उ०—भग, अंश, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु ये द्वादश आदित्यों के नाम महाभारत में लिखे हैं।

प्रश्न—एकादश रुद्रों के नाम क्या हैं ?

उ०—अजैक पाद अहिर्बुध्न विरूपाक्ष, सुरेश्वर, जयन्त, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वैवस्वत, सावित्र और हर—ये एकादश रुद्रों के नाम श्रीमद्भागवत में लिखे हैं।

प्रश्न—नित्य ऋषि कितने प्रकार के होते हैं ?

उ०—नित्य ऋषि सात श्रेणी के होते हैं। यथा—ब्रह्मर्षि, वसिष्ठादि* देवर्षि, कण्वादि, महर्षि, व्यासादि, परमर्षि भेलादि, काण्डर्षि, जैमिन्यादि, श्रुतर्षि, सुश्रुतादि, राजर्षि, ऋतुपर्णादि ये सात प्रकार के ऋषि हैं। इन्हीं ऋषियों के द्वारा प्रथम वेदादि आर्ष ग्रन्थों के ज्ञान का विस्तार संसार में होता है। अर्थात् ये सातों प्रकार के नित्य ऋषि ही †ज्ञान राज्य के संचालक समझे जाते हैं।

प्रश्न—नैमित्तिक ऋषि कौन से हैं ?

उ०—मनुष्य लोक में उक्त ऋषियों के अंश रूप से जिन ऋषियों का जन्म (अवतार) होता है उनको नैमित्तिक ऋषि कहते हैं।

प्र—नैमित्तिक ऋषि कितने प्रकार के हैं ?

---

* मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ।

† ऋषिदैवतमध्यात्मिकं नित्याश्च।

(दैवी मी०)

उ०—नैमित्तिक ऋषि पाँच श्रेणी के समझे जाते हैं।

यथा—ऋषियों से साक्षात् संबंध युक्त ऋषियों के अवतार *रूपी लेखक प्रथम श्रेणी के कहे जाते हैं। ऋषियों के साथ परम्परा संबंध से युक्त ऋतम्भरा नामक योग बुद्धि को प्राप्त लेखक दूसरी श्रेणी के समझे जाते हैं। तीसरी श्रेणी के नैमित्तिक ऋषि वे कहाते हैं, जो वेद तथा ऋषि प्रणीत शास्त्रों के सिद्धान्तों को पूर्ण रीत्या अथवा सारांश रूप से भली प्रकार समझ कर उनका विस्तार, टीका टिप्पणी, भाष्य द्वारा अथवा अन्य मीमांसा ग्रंथ द्वारा प्रकट करते हों। आचार्य्य प्रायः इसी श्रेणी के ग्रंथकर्त्ता साधारणतः होते आये हैं। चतुर्थ श्रेणी के ग्रन्थ-कर्त्ता वे होते हैं जो आर्ष ग्रन्थों से संग्रह करके अपने समय के देश काल के उपयोगी ग्रन्थों के प्रणयन द्वारा धर्म ज्ञान का प्रचार जगत् में करते हों तथा ऐसे विद्वान् भी इसी श्रेणी के समझे जाते हैं जो कि पूर्वाचार्य्यों का पथ अवलम्बन करके अपने समय के उपयोगी नाना प्रकार के ज्ञान विज्ञान के रहस्य, प्रतिपादक, नूतन ग्रन्थ प्रणयन करते हों। इस श्रेणी के ग्रंथकर्त्ताओं में प्रतिभा की आवश्यकता अवश्य ही रहती है। साधारण ग्रन्थकर्त्ता पञ्चम श्रेणी के समझे जा सकते हैं।

प्रश्न—नित्य पितृदेव कितने हैं ?

उ०—नित्य पितरों की संख्या एक त्रिंशत्‡(३१) है, यथा—विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद,

---

* ऋषि देवानामवतारणं तद्धव। (दै० मी०)

‡ एकत्रिंशत्पितृगणाः।

भूविकृत, भूति इत्यादि पितरों की संख्या मार्कण्डेय पुराण में लिखी है ।

प्र०—नैमित्तिक पितर कौनसे हैं ?

उ०—जीवित माता, पिता और पितामह अथवा मृत माता पितादि किसी निमित्त से पितृभाव को प्राप्त हुए हों वे भी नैमित्तिक पितर हैं । "पितृ" शब्द का तात्पर्य "पातिरक्षति" अर्थात् हमारे शरीर का पालनपोषण वा रक्षा करे वही पितृ शब्द वाच्य है ? किसी मनुष्य को तकलीफ करे वह पितृ नहीं कहा जा सकता ।

प्र०—परिच्छिन्न देव ऋषि पितरों की उपासना क्यों करनी चाहिये जब कि एक ईश्वर सर्व नियन्ता—देव ऋषि पितृ आदि सब का स्वामी सब चराचर जगत् में व्यापक है उस एक ईश्वर की उपासना ही सर्वोत्तम है ।

उ०—भगवान् कहते हैं कि जिस प्रकार गौ के सब शरीर में गोरस* रहता है, परन्तु स्तनों से ही निर्गत होता है ।

---

* आवि र्भवन्ति तत्रैव तिष्ठन्ति च तदिच्छया ।
यथा सर्वेषु कायेषु गवांतिष्ठति गो रसः ॥
तथापि गोस्तना देव स्रवतीति विनिश्चितम् ।
तथैव मामिका शक्तिर्विद्यमानाऽपि सर्व्वतः ॥
अध्यात्ममधिदैवञ्चाधिभूतमिति भेदतः ।
ऋषिभि र्देववृन्दैश्च पितृभिश्च यथा क्रमम् ॥
(सू० गी० १, ८१, ८२, ८४)

उसी प्रकार मेरी शक्ति सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी पृथ्वी पर अध्यात्म अधिदैव और अधिभूत रूप से आविर्भूत होती है। यह त्रिविध शक्ति क्रमशः ऋषि देवता और पितरों द्वारा अधिष्ठित है। "जिस प्रकार साम्राज्य की सुरक्षा के लिये कई एक कार्य्य विभाग और उक्त कार्य्य विभागों के अधिकार प्राप्त मुख्य अफ़सर रखे जाते हैं और वे अफ़सर वर्ग उक्त सम्राट् के प्रतिनिधि होकर साम्राज्य का सब प्रबन्ध चलाया करते हैं। उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड की सुरक्षा और पालनादि कार्य्यों के लिये, ईश्वर ने प्रधानतः तीन राज्य विभाग किये हैं। उन तीन विभागों के तीन अधिकारी बनाये गये हैं। यथा आध्यात्मिक (ज्ञान) राज्य, आधिदैविक (कर्म) राज्य और अधिभूत (स्थूल) राज्य। आध्यात्मिक* राज्य के संचालक ऋषिगण। आधिदैविक राज्य के संचालक देवता गण। और अधिभूत राज्य विभाग के संचालक पितृगण नियत किये गये हैं। ये तीनों देवता प्राणी मात्र के कल्याण के लिये सर्वथा प्रयत्न किया करते हैं। इसलिये मनुष्य इन तीनों देवताओं का जन्म से ही ऋणी है। अतः उनकी उपासना करना उचित है।

प्रश्न—इनकी उपासना किस रीति से करनी चाहिये?

---

* ऋषयो ज्ञान राजस्य देव वृन्दाश्च कर्म्मणः।
पितरः स्थूल देहस्य क्रमेणैते नियामकाः॥
(सु० गी० १। ८८)

उ०—वेद* शास्त्रादि के पाठ द्वारा, यज्ञादि साधन के द्वारा, सन्तानोत्पत्ति द्वारा और पितृ पूजादि के द्वारा, तीन ऋणों को चुका देने से। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शुद्धि से देवतागण, ऋषिगण और पितृगण सन्तुष्ट होते हैं। इस विषय में मनुजी† भी लिखते हैं कि-देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण ये तीनों ऋण दूर करके ब्राह्मण मोक्ष के अंग रूप संन्यास में मन लगावे, उन ऋणों के शोधन किये विना जो संन्यास को धारण करता है वह नरक में जाता है।

इति देव, ऋषि, पितृ उपासना।

---

* वेदशास्त्रादि पाठेन तथा यज्ञादि साधनात्।
प्रजया पितृ पूजाद्यैः ऋण त्रय विमोचनात्॥
आध्यात्मिक्याधिदैव्याधि भौतिकी शुद्धि तंस्तथा।
ऋषयो देव वृन्दाश्च तथा पितृगणाः सदा।

(सु० गी० १, ६४, ६५)

† ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानोव्रजत्यधः॥

(मनु० ६। ३५)

अवतारोपासना ।

(उत्तम-उपासना)

प्रश्न—अवतार किसे कहते हैं ?

उ०—किसी एक स्थान पर ईश्वर की विशेष शक्ति के प्राकट्य को अवतार कहते हैं अर्थात् जिस केन्द्र में ईश्वर शक्ति की नौ कलाओं से लेकर सोलह कलाओं तक का विकाश हो वह ईश्वर अवतार समझे जाते हैं।

वेद में लिखा है कि—"*षोडश कला वै पुरुषः ।*" "*षोडश कलाः सोम्य ! पुरुषः ।*" (तै० छा० उ०)

परमेश्वर षोडश कला शक्ति युक्त है। "अब स्थावर जङ्गम जीवों में उनकी कला विकाश के तारतम्यता को दिखाते हुए अवतार सिद्धि करते हैं"। "स्मृति"* कहती है

---

* ममैवैका कला शक्ते रुद्भिज्जेषु विकाशते।
स्वेदजेषु कलाद्वैतमण्डजेषु कला त्रयम् ॥
ततश्च कला भान्ति जरायुजगणेऽखिले।
पञ्च कोषप्रपूर्णे त्वान्मर्त्येषु प्रायशोऽमराः ॥
आकला पञ्च का दृष्ट कला नूनं चकासति।
नवारभ्य कला यावत्षोडशं मे यथायथम् ॥
सम्विकाश्यावतारेषु नाना केन्द्रोद्‌भवेषु च।
कुत्र चिन्मे प्रपूर्य्यन्तेऽवतारे पूर्ण संज्ञके ॥

(श० गी० २, २६, ३०, ३१-३२)

कि—ईश्वर शक्ति की एक कला उद्भिज में, स्वेदज में दो कलाओं का, अण्डज में तीन कलाओं का और सब जरायुज योनि के अन्तर्गत पशु योनि में चार कलाओं का विकाश होता है। तथा पंच कोषों के पूर्ण अधिकारी होने के कारण मनुष्य योनि में पांच कला से लेकर आठ कलाओं तक का विकाश होता है और नाना केन्द्रों से आविर्भूत ईश्वर अवतारों में नव से लेकर सोलह कलाओं का यथावश्यक विकाश होकर किसी पूर्णावतार में षोडश कलाएँ पूर्ण विकशित होती हैं। वही ईश्वर का पूर्णावतार कहा जाता है।

प्र०—सर्व व्यापी निराकार परमेश्वर साकार रूप (अवतार) कैसे धारण करता है?

उ०—जैसे अग्नि और वायु सर्व व्यापी निराकार होते हुए भी संसार के हितार्थ साकार रूप धारण करते हैं; अर्थात् विशेष रूप से प्रकट होकर संसार का उपकार करते हैं। वैसे ईश्वर भी सृष्टि प्रलय शून्य अवस्था में सर्व व्यापी निराकार और सृष्टि रचना, पालन और संहार में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि साकार रूपों को धारण करते हैं। ऐसा श्रुति* में लिखा है। तथा स्मृति में कहा है कि—

---

* स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः इत्यादि।

गो, ब्राह्मण*, देवता, साधुगण और वेद-धर्म की रक्षा के लिये, ईश्वर साकार रूप (अवतार) धारण करते हैं।

प्रश्न—क्या सर्व व्यापी निराकार (ईश्वर) धर्म रक्षादि रूप संसार का उपकार नहीं कर सकता? यदि कर सकता है, तो अवतार लेने की क्या आवश्यकता है?

उ०—निराकार ईश्वर संसार का प्राकृतिक उपकार करता है, सो हमेशा करता ही रहता है, परन्तु धर्मादि रक्षा तथा दुष्टों का नाश रूप विशेष कार्य अवतार द्वारा ही करता है। जैसे अग्नि काष्ठादि वनस्पतियों में व्याप्त हो कर कुछ उन का प्राकृतिक उपकार (वृक्षों के अङ्गों में जल पहुँचाना तथा जल के अंश को शोषण करना) ही है। परन्तु विशेष कार्य्य किसी का दाल, भात पकानादि नहीं कर सकता। यदि जब किसी को भोजन पकाना आदि कार्य करना होता है, तब वह सर्व व्यापी अग्नि किसी एक देश चूल्हादि में विशेष रूप से प्रकट होती है। अब ऐसा भी मिथ्याभ्रम नहीं करना चाहिये कि यहाँ पर इतनी अधिक अग्नि हो गई तो और जगह से कम या नष्ट हो गई होगी। जैसे कि—आज कल बहुत से मनुष्य तर्क करते

* गो विप्र सुर साधूनां छन्दसामपि चेश्वरः।
रक्षामिच्छंस्तनुर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि॥
(भागवत)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥
गीता।

हैं कि राम या कृष्ण ही ईश्वर हैं तो क्या और कहीं ईश्वर नहीं रहा, उनको उपर्युक्त दृष्टान्त विचारना चाहिये। किसी एक देश में विशेष अग्नि के प्रकट होने से सर्व व्यापी अग्नि नष्ट या कम नहीं हो जाती है किन्तु वहां पर उसके अंशांशों का विशेष रूप प्रकट हो गया है जिससे मनुष्यों का विशेष उपकार हो सके अस्तु ! सी प्रकार सर्वव्यापी ईश्वर संसार के विशेष उपकार के लिये किसी केन्द्र में अपनी विशेष कलाओं का विकाश करके अव· तार धारण करते हैं।

प्र०—ईश्वर कितने अवतार धारण करता है ।

उ०—वेद* में लिखा है कि—परमेश्वर अपनी माया के संयोग से अनेक अवतार धारण करते हैं, भक्तों के प्रार्थनानुसार यथावश्यक प्रख्यात होने के लिये सैकड़ों रूप धारण करते हैं, उनमें दश अवतार मुख्य हैं। तथा स्मृति में कहा है कि—जिस प्रकार अगाध जल से युक्त महा सरोवर से सहस्रों छोटी नदियाँ निकलती हैं, तिसी प्रकार सत्त्व गुण के समुद्र श्री भगवान् से असंख्य (अन गिनती) अवतार‡ प्रकट होते हैं। उनमें चौबीस अवतार मुख्य हैं।

---

* "रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥
(ऋग्वेद, मं० ६, अ० ४, सू० ४७, मं० १८ में)

‡ अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्व निधेर्द्विजाः ।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥
(भा० १।३।२६)

प्र०—चौवीस अवतारों के नाम क्या हैं ?

उ०—बराह, यज्ञ, कपिल, दत्तात्रेय, कुमार-चतुष्टय, नर-नारायण, ध्रुव, पृथु, ऋषभ, हयग्रीव, मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, हरि, वामन, हंस, मन्वन्तर (मनु) धन्वन्तरि, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, व्यास, बुद्ध और कल्कि। ये २४ अवतारों के नाम श्रीमद्भागवात के (२।७) में लिखे हैं।

प्र०—२४ अवतारों में मुख्य कितने अवतार हैं ?

उ०—मत्स्य, कूर्म, बराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण-बलराम, बुद्ध और कल्कि। ये दश अवतार* मुख्य हैं। इन में नव कलाओं से पन्द्रह तक के अंशावतार और सोलह कलाओं के पूर्णावतार हैं।

प्र०—अंशावतार कितने और पूर्णावतार कितने हैं ?

उ०—मच्छ, कच्छ, बराह, नृसिंह, वामन परशुराम, बुद्ध, कल्कि ये आठ अंशावतार हैं और श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्णचन्द्र ये दोनों पूर्णावतार हैं। क्योंकि इनके साथ अवतार सम्बन्धी विज्ञानों तथा लीलाओं का सम्बन्ध-शास्त्रों में विशेष रूप से पाया जाता है। अतः इनको पूर्ण ब्रह्म समझ कर उपासना करनी चाहिये।

प्र०—निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना से सब साकार रूप अवतारों की उपासना हो सकती है, जैसे वृक्ष के मूल में जल सींचने से सर्व शाखा दलों में जल पहुँच जाता है। इस हेतु से निर्गुण ब्रह्मोपासना ही करनी चाहिये।

---

* मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा।
रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्किर्दश स्मृताः॥

उ०—यद्यपि निर्गुण ब्रह्मोपासना में सब उपासनाओं का समावेश है तथापि विषयासक्त बहिर्मुख मनुष्य उस के अधिकारी नहीं हो सकते कारण कि-निर्गुण ब्रह्म अतीन्द्रिय है। इसी लिये श्रीभगवान् ने गीता* में कहा है कि-निराकार ब्रह्म में आसक्त है चित्त जिनका, उनको अधिकतर क्लेश होता है, क्योंकि अव्यक्त की गति (उपासना) देहाभिमानी पुरुषों कर के दुःख से प्राप्त की जाती है। अतएव प्रथम सगुण (अवतार) उपासना ही करनी चाहिये।

"जो लोग सर्वथा ही अवतार नहीं मानते, वे भी किसी न किसी प्रकार साकार को मध्यस्थ या शिक्षक तथा नियत, मान कर ही ईश्वराराधन करते हैं, बिना साकार की प्राधान्यता या नियति के कोई भी ईश्वराराधन नहीं कर सकता।

प्रश्न—अवतारोपासना किस रीति से करनी चाहिये ?

उ०—अवतारोपासना नवधा भक्ति के द्वारा की जाती है।

प्रश्न—नवधा भक्ति के क्या लक्षण हैं ?

उ०—श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन, ये नवधा† भक्ति का स्वरूप है।

---

* क्लेशोऽधिकरस्तेषा मव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥

(गी० १२-५)

† श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् ॥
(भा० ७, ५, २३)

प्रश्न—अवतारोपासना से क्या फल मिलता है?

उ०—निष्काम भक्ति करने से ज्ञान के द्वारा कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति होती है और सकाम भक्ति करने से यथाधिकार चतुष्टय मुक्ति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न—चतुष्टय मुक्ति कौनसी हैं?

उ०—सालोक्य सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य ये चार प्रकार की मुक्ति है।

प्रश्न—सालोक्य मुक्ति किसे कहते हैं?

उ०—राजा के साधारण प्रजा के समान ईश्वर के वैकुंठ और स्वर्गादि लोकों में जाकर रहने का नाम सालोक्य मुक्ति है।

प्रश्न—सामीप्य मुक्ति किसे कहते हैं?

उ०—राजा के किंकर के समान भगवान् के पास रहने का नाम सामीप्य मुक्ति है।

प्रश्न—सारूप्य मुक्ति किसे कहते हैं?

उ०—राजा के अनुज की तरह भगवान् के समान रूप की प्राप्ति का नाम सारूप्य मुक्ति है।

प्रश्न—सायुज्य मुक्ति किसे कहते हैं?

उ०—राजा के ज्येष्ठ (युवराज) पुत्र की तरह ईश्वर के समान सत्य संकल्पादि ऐश्वर्य की प्राप्ति का नाम सायुज्य मुक्ति है।

इति अवतारोपासना समाप्त।

पंचसगुण ब्रह्मोपासना।

प्रश्न—पंच सगुण ब्रह्मोपास्य कौनसे हैं ?

उ०—विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेश ये पांच सगुण ब्रह्मोपास्य हैं। इन पांचों देवों की उपासना भी उत्तम श्रेणी की है।

प्र०—इन पंच सगुण ब्रह्म रूपों की उपासना किस रीति से करनी चाहिये ?

उ०—इन पंच सगुण ब्रह्मरूपों की उपासना मूर्ति पूजा के द्वारा करनी चाहिये। अर्थात् इन पंच देवों का प्रतीक ध्यान करना चाहिये।

प्रश्न—प्रतीक ध्यान किस प्रकार करना चाहिये ?

उ०—अन्य में अन्य की बुद्धि करके उपासना करना, प्रतीक ध्यान कहलाता है अर्थात्-अन्य वस्तु का अन्य रूप से ध्यान, जैसे—सालिगराम का विष्णु रूप से ध्यान, नर्मदेश्वर का शिवरूप से इत्यादि।

इति पंच सगुण ब्रह्मोपासना।

निर्गुण ब्रह्मोपासना।

(सर्वोत्तम)

प्रश्न—निर्गुण ब्रह्मोपासना किस रीति से करनी चाहिये।

उ०—निर्गुण ब्रह्मोपासना ओंकार के ध्यान द्वारा की जाती है।

प्रश्न—ॐकार का चिंतन किस प्रकार से किया जाता है ?

उ०—इन्द्रियों का अविषय जो भावग्राह्य मनोगम्य निर्गुण देव है, तिस ब्रह्म का ओंकार मुख्य *नाम है, क्योंकि ओंकार रूप नाम से आहूत (बुलाया हुआ) वह परमेश्वर प्रसन्न हो जाता है। इसलिये ओम्कार ब्रह्म का वाचक† (बोधक शब्द) है और ब्रह्म वाच्य है, वाच्य वाचक का सदा अभेद होता है इस रीति से ॐकार ही ब्रह्म रूप है और जो कुछ नाम रूपात्मक दृश्यमान जड़ चेतन रूप जगत् है, सो सब ओंकार स्वरूप है।

यह ॐकार ब्रह्मात्मा स्वरूप चार पाद वाला है, ऐसा माण्डूक्य‡ उपनिषद् में लिखा है। इसके चारों पाद (मात्रों) का विधिपूर्वक चिंतन करने से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

प्रश्न—ब्रह्म, आत्मा और ॐकार के चार पाद कौन से हैं ?

उ०—विराट्,

हिरण्यगर्भ,

ईश्वर और

ईश्वर साक्षी

ये चार पाद ब्रह्म के हैं।

---

* अदृष्टो विग्रहो देवो भाव ग्राह्यो मनोमयः।
तस्योंकारः स्मृतो नाम तेनाऽऽहूतः प्रसीदति॥
(यो० भा०)

† तस्य वाचकः प्रणवः (यो० सू०)

‡ सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोयमात्मा चतुष्पाद॥
(मा० उ०)

विश्व

तेजस

प्राज्ञ और

तुरीय

ये चार पाद आत्मा के हैं ।

अकार

उकार

मकार और

अमात्रा

ये चार पाद ओंकार के हैं ।

प्रश्न—इनके चारों पादों का चिंतन किस प्रकार करना चाहिये ?

उ०—ब्रह्म के चार पाद में प्रथम

विराट् है और

आत्मा के चार पाद में प्रथम

विश्व है ।

तैसे ॐकार के चार पाद में प्रथम

अकार है ।

इसलिये प्रथमता तीनों में समान धर्म होने से

विराट्

विश्व और

अकार का

अभेद चिंतन करना चाहिये अर्थात् सात* अङ्ग और उन्नीस मुख युक्त विश्व का चिंतन करना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्म का द्वितीय पाद हिरण्यगर्भ है और आत्मा का द्वितीय पाद तेजस है तैसे ओंकार का द्वितीय पाद उकार है इन तीनों को एक रूप से चिंतन करना चाहिये।

एवं ईश्वर, प्राज्ञ और मकार का अभेद चिंतन करना चाहिये तथा तत्पद का लक्ष्य ईश्वर साक्षी त्वं पद का लक्ष्य जीव साक्षी (तुरीय) अमात्र स्वरूप ॐकार का अभेद चिंतन करना उचित है।

इस प्रकार ॐकार चिंतन करने को निर्गुण ब्रह्मोपासना कहते हैं। इसी को अहंग्रह ध्यान भी कहते हैं।

प्रश्न—निर्गुण ब्रह्मोपासना का फल क्या है?

उ०—निष्काम-निर्गुण उपासना से इह लोक में ही ज्ञान के द्वारा कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति होती है और सकाम करने से देवायन मार्ग के द्वारा ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है।

प्रश्न—ब्रह्मोपासक-इसी शरीर से ब्रह्मलोक में जाता है अथवा स्थूल शरीर को त्याग के जाता है?

उ०—स्थूल को त्याग के सूक्ष्म शरीर से जाता है।

---

* (१) मस्तक स्थानी स्वर्ग लोक (२) नेत्र स्थानी सूर्य (३) प्राण स्थानी वायु (४) मध्य स्थानी आकाश (५) मूत्र स्थानी जल (६) पाद स्थानी पृथ्वी (७) मुख स्थानी अग्नि ये सात अंग विराट् रूप विश्व के हैं, और ५ कर्मेन्द्रिय ५ ज्ञानेन्द्रिय ५ प्राण, मन, बुद्धि चित्त और अहंकार ये १९ मुख विश्व के समझना चाहिये।

प्रश्न—उपासक-मृत्यु के पश्चात् स्वयं ब्रह्मलोक को जाता है, अथवा उसको कोई यमदूत ले जाते हैं ?

उ०—मरण समय पुरुष के इन्द्रिय अंतःकरण सारे मूर्च्छित (बेहोश) होते हैं, इसलिये स्वयं कहीं जाने में समर्थ नहीं और यम के दूत उपासक के समीप आते नहीं किन्तु देवता लोग उसको ब्रह्मलोक में ले जाते हैं।

प्रश्न—ब्रह्मलोक के मार्ग का क्रम किस प्रकार है ?

उ०—छान्दोग्य तथा बृहदारण्य आदि उपनिषदों में ब्रह्मलोक के मार्ग का क्रम इस प्रकार बतलाया है कि (१) उपासक के मृत्यु समय अग्नि अभिमानी देवता उसको स्थूल शरीर से निकाल के अपने लोक में ले जाता है (२) अग्नि लोक से दिन का अभिमानी देवता ले जाता है (३) दिन से शुक्ल पक्ष का (४) तिससे आगे उतरायण षट् मास का (५) तिससे आगे संवत्सर का (६) संवत्सर से देवलोक का (७) देवलोक से वायु का (८) वायु से सूर्य्य (९) सूर्य्य से चन्द्र देवता (१०) चन्द्र से विद्युत् का (११) बिजली लोक से तिस उपासक के सामने हिरण्य गर्भ की आज्ञा से दिव्य पुरुष लेने को आता है वह पुरुष बिजली लोक से वरुण लोक (१२) वरुण लोक से इन्द्र लोक (१३) इन्द्र से प्रजापति लोक और (१४) प्रजापति से ब्रह्मलोक में ले जाता है। इस प्रकार देवलोकों की सैर (हवा खोरी) करता हुआ उपासक ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है फिर ब्रह्म लोक के अधिपति हिरण्य गर्भ के साथ वहां का आनन्द भोगता है। सूक्ष्म समष्टि का अभिमानी चेतन हिरण्य गर्भ कहलाता

है । तिसको कार्य्य ब्रह्म भी कहते हैं, कार्य्यब्रह्म के निवास स्थान को ब्रह्मलोक कहते हैं ।

प्रश्न—ब्रह्म लोक की प्राप्ति से क्या फल मिलता है ?

उ०—ब्रह्म लोक के उपासक को सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति होती है अर्थात् उसको हिरण्य गर्भ के समान विभूति प्राप्त होती है सत्य संकल्प होता है, बहुत क्या कहें जो कुछ संकल्प करे सोई सिद्ध होता है, जगत् की उत्पत्ति, पालन संहार छोड़ के और सारी विभूति ईश्वर के समान उसको प्राप्त होती हैं इसी का नाम सायुज्य मोक्ष है ।

इति निर्गुण ब्रह्मोपासना ।

योग संबंधी चतुष्टय उपासना ।

प्रश्न—योग संबंधी उपासना के कितने भेद हैं अर्थात् योग कितने प्रकार का होता है ।

उ०—हठयोग, लययोग, मंत्र योग और राजयोग इस प्रकार अवांतर भेद से एक ही योग चार* प्रकार का कहा गया है ।

---

* मंत्रोलयो हठो राजयोगोऽन्तर्भूमिकाः क्रमात् । इति श्रुतिः

(योगशिक्ष)

मंत्रो हठो लयो राजा योगोयं भूमिका क्रमात ।
एक एव महादेवि चतुर्धा संप्रकीर्त्यते ॥

(योग बीज)

(हठ-योग)

प्रश्न—हठयोग का क्या लक्षण है।

उ०—हकार नाम सूर्य का है और ठकार चन्द्रमा की संज्ञा है तिन दोनों का जो योग अर्थात् चन्द्रमा रूप इडा और सूर्य रूप पिंगला का एक ही भाव है, तिसका नाम हठ* योग है। "हठयोग का सारांश यह है कि—इस शरीर में एक सौ नाड़ी मुख्य हैं, तिस एक एक में से सौ सौ शाखा रूप नाड़ी निकली हैं पुनः तिन शाखा रूप नाड़ियों में से एक २ नाड़ी से बहत्तर-बहत्तर हजार उपशाखा नाड़ियां निकली हैं, ये सब मिल कर के नाड़ियों की संख्या ७२, ७२, १०, २०१ होती है। इस पकार प्रश्नोपनिषद् में लिखी हैं।"

उपर्युक्त समस्त नाड़ियों में से इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ी योगाभ्यास में श्रेष्ठ हैं। पुनः तिन में भी एक सुषुम्ना ही मुख्य है क्योंकि सुषुम्ना ही सब नाड़ियों का आधार भूत है, इस कारण एक सुषुम्ना ही योगियों को मोक्ष† मार्ग में द्वार भूत है। (सुषुम्ना का मार्ग) नासिका के बायें द्वार में इडा नाड़ी का स्थान है और नासिका के दायें द्वार में पिंगला नाड़ी रहती है इन दोनों के मध्य में सुषुम्ना का स्थान है अर्थात् कंद‡ के

---

* हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्यचन्द्रमसो योगात् हठयोगो निगद्यते॥
(गोरक्षप०)

† मोक्ष मार्गे प्रतिष्ठानात्सुषुम्ना विश्व रूपिणी। (यो० शि० उ०)

‡ लिंग से ऊपर और नाभि से किंचित् नीचे कंद का स्थान है॥

मध्य भाग विषे सुषुम्ना नाड़ी की स्थिति है। सो पृष्ठ भाग से मेरु दण्ड द्वारा ब्रह्मरंध्र पर्यंत गई है। ऐसे श्रुति में लिखा है कि:—ब्रह्म नाड़ी-सुषुम्ना देह* के मध्य भाग से उठ कर आधार चक्र में आती है, आधार से स्वाधिष्ठान चक्र विषे आती है, तहां से मणि पूरक चक्र में आती है तिससे ऊर्ध्व अनाहत चक्र में आती है। तहां से कंठ स्थान विशुद्ध चक्र में आती है तहां से सुषुम्ना के पश्चिम और पूर्व दो मार्ग हैं, तिनमें पश्चिम मार्ग तो ग्रीवा के पृष्ठ भाग विषे स्थित जो मेरु दंड (वंकनाल) है, तिसके द्वारा ब्रह्म रन्ध्र विषे जाती है और पूर्व मार्ग भ्रू मध्य देश विषे जो आज्ञा चक्र है, तिसके द्वारा ब्रह्म रन्ध्र को जाती है। तिन दोनों में पश्चिम मार्ग उत्तम है।

"जब प्राणायाम के समय योगी प्रथम इडा द्वार से प्राणवायु का पूरक करता है पश्चात् यथाशक्ति कुंभक करके पिंगला द्वार से रेचक करता है फिर पिंगला से पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक करता है तदनन्तर इड़ा द्वार से रेचक करता है इस प्रकार प्राणायाम करने से चन्द्रमा रूप इड़ा और सूर्य रूप पिंगला की ऐक्यता होने से सुषुम्ना की धारा बहती है। तिस सुषुम्ना के द्वारा योगी भ्रू (भ्रकुटी) के मध्य †ज्योतिर्लिङ्ग का सदा ध्यान तथा दर्शन करता है। ये ही हठ योग का सिद्धान्त है। और नाड़ी शुद्धि मुद्राभ्यास कुण्डलिनी बोध षट् चक्र भेदन इत्यादि हठ योग के अवान्तर भेद योगशास्त्र में कहे हैं।

---

* देहे मध्ये ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना सूर्य रूपिणी पूर्ण चन्द्राभा वर्तते। सा तु मूला धारा दारभ्यब्रह्मरंध्र गामिनी भवति। इति श्रुतिः ॥

(श्रद्वयतार उ०)

† ज्योतिर्लिङ्ग भ्रुवोर्मध्य नित्यंध्यायेत्सदायंतिः। इति श्रुतिः।

प्रश्न—हठ योग करने से क्या फल होता है।

उ०—जब सूर्य चन्द्रमा की एकतारूप हठयोग की सिद्धि होती है, तब सर्व दोषाकार हृदय की समस्त जड़ता नष्ट होजाती है। ऐसा योग बीज* में लिखा है। अर्थात् मल विक्षेप दूर हो जाता है।

इति हठयोग।

लय योग।

प्र०—लय योग का क्या लक्षण है।

उ०—शांभवी मुद्रा के अभ्यासपर्वक किसी बिंदु (लक्ष्य) में चित्तवृत्ति का ध्यान जमाना इस को लय योग कहते हैं।

इसी योग को मुसलमान लोग इल्मतवज्जु कहते हैं और इङ्गलिशमैन इसी योग को मैस्मरेजम कहते हैं। भारतीय एक योगी से किसी अङ्गरेज ने इस योग को सीख कर अमेरिका और योरोप में इसका प्रचार किया है सुनते हैं कि आज कल वहां की लेडियां लय योग द्वारा रोगियों को बिना इलाज के आराम करने लग गई हैं।

प्रश्न—शाम्भवी मुद्रा किसे कहते हैं?

---

* सूर्य्य चन्द्रमसेरेक्यं हठ इत्यभिधीयते।
हठेन ग्रस्यते जाड्यं सर्व दोष समुद्भवम्॥ (योगबीज)

उ०—चित्त वृत्ति के लक्ष्य को शरीर के अन्दर करके अर्द्ध खुले हुए नेत्रों की दृष्टि को प्राण के अग्र भाग विषे अथवा अन्य किसी वस्तु पर एकाकार करके स्थित होना तिसका नाम शाम्भवी* मुद्रा है।

प्रश्न—लय योग से और क्या २ फल होता है ?

उ०—लय योग से मनुष्य की बिखरी हुई सब मानसिक शक्तियां एकत्र हो जाती हैं। जैसे प्रकाश की फैली हुई किरणों के एकत्र होजाने से उनमें विशेष शक्ति आ जाती है, वैसे ही मन की समस्त शक्तियों के केन्द्रीभूत हो जाने से सब कुछ दृष्टिगत होने लगता है। एकाग्र मन से मनुष्य चाहे जिस पर अपना प्रभाव डाल सकता है। जैसे कि आज कल मैसमरेजिम वाले अपनी मानसिक शक्तियों का प्रभाव दूसरों पर डालते हैं। तथा एकाग्र चित्त से भजन कर के ईश्वर को अपने अन्दर देख सकता है।

इति लय योग।

मंत्र योग।

प्रश्न—मंत्र योग का क्या लक्षण है ?

उ०—मंत्र योग का लक्षण योग बीज में तथा ध्यान बिन्दू आदि उपनिषद में इस प्रकार कथन किया है कि ("षट् *शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येक विंशतिः।* (यो० उ०)

---

* अन्तर्लक्ष्यं वहिर्दृष्टिर्निमेशोन्मेष वर्जिता।
सा भवेच्छाम्भवी मुद्रा सर्व तंत्रेषु गोपिता॥ (अमनस्क खंड)

अर्थात् इक्कीस हजार और छः सो अधिक, हंस मंत्र का नित्यप्रति सर्व प्राणी जप* करते हैं । हकार करके यह श्वास बाहर आता है और सकार करके पुनः शरीर के भीतर प्रवेश करता है इस प्रकार हंस हंस इस मंत्र का सर्वदा ही ये सब जीव जप करते हैं । परन्तु जानते नहीं । गुरु मुख द्वारा तिस की विधि के जानने से सुषुम्ना नाड़ी विषे हंस हंस मंत्र के उल्टाने से सोहं सोहं जप होता है इसी को मंत्र† योग कहते हैं ।

प्रश्न—मंत्र योग से क्या फल होता है ।

उ०—मंत्र योग के द्वारा साधक को दश प्रकार के नाद का अनुभव होता है अर्थात् साधक के ब्रह्माण्ड में दश प्रकार के अनहद बाजे बजने लगते हैं तिनके श्रवण से योगी को शब्द ब्रह्म का ज्ञान होता है । शब्द ब्रह्म का ज्ञान होने से शरीर के भीतर की सर्व रचना प्रत्यक्ष होती है तब वह योगी भूत, भविष्य और वर्त्तमान का ज्ञाता (त्रिकालदर्शी) होता है ।

प्रश्न—उन दश नादों की ध्वनि किस प्रकार सुनाई देती है ।

उ०—चिणीवत्, चिंचिणीवत्, घंटावत्, शंखवत्, वीणावत्, तालवत्, वंसीवत्, मृदंगवत्, भेरीवत् दशमा मेघ के समान । इस प्रकार दश नादों की ध्वनि हंस उपनिषद् में कथन की है ।

इति मंत्र योग समाप्त ।

---

* सकारं च हकारं च जीवो जपति सर्वदा ॥ इति श्रुति ॥

† सोऽहं सोऽहमिति प्रोक्तो मंत्रयोगः स उच्यते । (यो० उ०)

(राज योग)

प्रश्न—राज योग का क्या लक्षण है।

उ०—राज योग का लक्षण योग दर्शन में भगवान् पतंजलि ने इस प्रकार कथन किया है कि *"योगश्चित्त वृत्ति निरोधः"* अर्थात् पाँच प्रकार की चित्त वृत्तियों का निरोध करना तिसका नाम राजयोग है। इन वृत्तियों के नाम और लक्षण योग दर्शन में लिखे हैं तहाँ देख लेना यहाँ विस्तार के भय से नहीं लिखा है।

प्रश्न—राज योग का सारांश क्या है?

उ०—राज योग का सारांश यह है कि—अभ्यास और वैराग्य से चित्त की वृत्तियों का निरोध (रोकना) करके आत्म ज्ञान को प्राप्त करना।

प्रश्न—वैराग्य कितने प्रकार का होता है?

उ०—पर अपर भेद से दो प्रकार का होता है। तथा आवान्तर भेद से आठ प्रकार का आगे* कहा गया है।

प्रश्न—क्या अभ्यास करना चाहिये?

उ०—राज योग के अष्ट अङ्गों का अनुष्ठान करना।

प्रश्न—योग के आठ अङ्ग कौनसे हैं।

उ०—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ अङ्ग† योग के हैं।

---

* संन्यासाश्रम में देखो।

† यम नियमाऽऽसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि (यो० सू० २-२९)

प्रश्न—यम किसे कहते हैं ।

उ०—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन का नाम यम है ।

प्रश्न—नियम किसे कहते हैं ।

उ०—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, इनको नियम कहते हैं ।

प्रश्न—आसन किसे कहते हैं ।

उ०—सुख पूर्वक एक जगह स्थिर बैठने का नाम आसन है । चौरासी लक्ष आसनों में से चाहे कोई भी आसन हो ।

प्रश्न—प्राणायाम किसे कहते हैं ।

उ०—तिस आसन पर स्थित होकर श्वास प्रश्वास की स्वाभाविक गति को रेचक पूरक कुंभक करके रोक देना, तिसका नाम प्राणायाम* है ।

प्रश्न—प्रत्याहार किसे कहते हैं ।

उ०—इन्द्रियों का चित्त के आधीन होना जैसे मधुकर राज मक्षी के अधीन सब मधु मक्षियां होती हैं, तैसे चित्त के आधीन इन्द्रियों का होना प्रत्याहार है ।

प्र०—धारणा किसे कहते हैं ।

उ०—स्थूल वा सूक्ष्म बाह्य वा आभ्यन्तर किसी विषय में चित्त को बांध देना अर्थात् बाह्य-नासिकादि के अग्र भाग में

---

* रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुम्भकः ।
प्रोच्यते सर्व शास्त्रेषु योगिभिर्यत मानसैः ॥
(नागदे०)

या आभ्यन्तर आधारादि* षट् चक्रों में चित्त को बांध कर ध्यान करने को धारणा कहते हैं ।

प्रश्न—ध्यान का क्या लक्षण है ।

उ०—ध्येयाकार चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं ।

प्रश्न—समाधि का क्या लक्षण है ।

उ०—पूर्वोक्त ध्यान ही समाधि कही जाती है अर्थात् ध्यातृ ध्यान ध्येय रूप, त्रिपुटी भेद से रहित केवल ध्येय मात्र की प्रतीति (भान) का नाम समाधि है ।

प्रश्न—इसे राजयोग क्यों कहते हैं ।

उ०—मंत्र योग, हठ योग, लययोग इत्यादि समस्त योगों का †राजा होने से इसको राज योग कहते हैं । अथवा राज योग में सब योगों का अन्तरभाव है इसलिये यह राजयोग कहा गया है ।

प्रश्न—राज योग करने से क्या फल मिलता है ।

उ०—राज योग से स्वरूप का ज्ञान होता है तथा अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं ।

इति राज योग सारांश समाप्त ।

इति श्री स्वामी अचलराम विरचित हिन्दू धर्म रहस्यान्तर्गत उपासना यज्ञ की २७ शाखाएँ समाप्त ?

---

* आधारं गुद मित्युंक्त स्वाधिष्ठानं तु लैङ्गिकम् ।
मणिपूरं नाभिदेशं हृदयस्थमनाहतम् ॥
विशुद्धिः कण्ठ मूले च आज्ञा चक्रं च मस्तकं ॥
(योग कुं,उ० श्रुतिः)

† राजत्वात सर्व योगानां राज योग इति स्मृतः ।

अथ ज्ञान यज्ञ ।

प्रश्न—ज्ञान यज्ञ की कितनी शाखाएँ हैं ।

उ०—ज्ञान यज्ञ के श्रवण, मनन, निदिध्यासन ये तीन भेद त्रिगुण सम्बन्ध से नवधा विभक्त होकर नौ* प्रति शाखाएँ होती हैं ।

प्रश्न—श्रवण ज्ञान किसे कहते हैं ।

उ०—चतुष्टय साधन संयुक्त होकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरू के मुख से तत्त्वमस्यादि महा वाक्यार्थ सुनने का नाम श्रवण है ।

प्रश्न—ज्ञान के चार साधन कौन से हैं ।

उ०—विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व ये चार साधन हैं ।

प्रश्न—विवेक किसे कहते हैं ।

उ०—इस संसार में नित्य और अनित्य क्या वस्तु है । इसका विचार करना अर्थात् ब्रह्मात्मा नित्य है और उससे अतिरिक्त समस्त पदार्थ अनित्य हैं इस प्रकार के विवेचना का नाम विवेक है ।

प्रश्न—विराग किसे कहते हैं ।

---

* श्रवणं मननञ्चैव निदिध्यासन मेव च ।
त्रयोऽमी ज्ञान यज्ञस्य भेदास्त्रै गुण्य योगतः ॥
नवधा सम्विभक्ताहि प्रति शाखा नवासते ॥
(शा० गी० ७।१३६)

उ०—इस लोक से लेकर ब्रह्म लोक पर्यंत समस्त सांसारिक विषय भोगों को चित्त से त्याग करना ही विराग का लक्षण है।

प्रश्न—शम आदि, सम्पत्ति का क्या लक्षण है।

उ०—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान ये षट् सम्पत्ति के लक्षण हैं।

प्रश्न—मुमुक्षुत्व का क्या लक्षण है।

उ०—जन्म मरण रूप संसार बंधन से मेरी मुक्ति हो इस प्रकार इच्छा होने का नाम मुमुक्षुत्व है। उपर्युक्त चतुष्टय साधन सम्पन्न मनुष्य ही आत्म ज्ञान का अधिकारी हो सकता है।

प्रश्न—अधिकारी पुरुष को क्या करना चाहिये?

उ०—आत्मानात्मा का विचार करना चाहिये।

प्रश्न—आत्मानात्मा का विचार किस रीति से करना उचित है।

उ०—स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर से भिन्न एवं पञ्च कोश अतीव तथा तीनों अवस्थाओं का साक्षी (जानने वाला) और सत् चित आनन्द स्वरूप आत्मा मैं हूँ ऐसा बारंबार विचार करना चाहिये।

स्थूल देह ।

प्रश्न—स्थूल शरीर कौन सा है।

उ०—पंचीकृत पंच महाभूतों के पचीस तत्त्वों का स्थूल शरीर है।

प्रश्न—पंच महा भूत कौन से हैं?

उ०—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी।

प्रश्न—पंच महाभूत के पचीस तत्त्व कौन से हैं ?

उ०—(१) काम, क्रोध, शोक, मोह, और भय, ये आकाश के पांच तत्त्व हैं।

(२) चलन, वलन, धावन, प्रसारण और आकुंचन ये पांच तत्त्व वायु के हैं।

(३) क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा और कांति ये पांच तत्त्व तेज के हैं।

(४) शुक्र, शोणित, लार (कफ), मूत्र और पसीना ये पांच तत्त्व जल के हैं।

(५) अस्थि (हाड़), मांस, नाड़ी, त्वचा और रोम ये पांच तत्त्व पृथ्वी के हैं।

इन पचीस तत्त्वों का यह स्थूल देह है

लिंग देह।

प्रश्न—सूक्ष्म शरीर कौन सा है ?

उ०—अपंची कृत पंच महाभूत के सत्रह तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर कहा जाता है।

प्रश्न—सूक्ष्म शरीर के सत्रह तत्त्व कौन से हैं ?

उ०—५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ प्राण, मन और बुद्धि, ये सत्रह तत्त्व सूक्ष्म शरीर के हैं।

प्रश्न—पांच ज्ञानेन्द्रियाँ कौन सी हैं ?

उ०—श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।

प्रश्न—पांच कर्मेन्द्रियां कौन सी हैं ?

उ०—वाक्, पाणि (हाथ), पाद, उपस्थ (लिंग) और गुदा, ये पांच कर्मेन्द्रियाँ हैं।

प्रश्न—पाँच प्राण कौन से हैं ?

उ०—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये पाँच प्राण हैं।

प्रश्न—मन किसे कहते हैं ?

उ०—संकल्प विकल्प रूप अंतःकरण की वृत्ति का नाम मन है।

प्रश्न—बुद्धि किसको कहते हैं ?

उ०—निश्चय रूप अन्तःकरण की वृत्ति का नाम बुद्धि है।

अहंकार और चित्त का मन बुद्धि में अन्तरभाव है।

कारण देह।

प्रश्न—कारण शरीर कौन सा है।

उ०—पुरुष जब सुषुप्ति अवस्था से उठै तब कहता है कि आज मैंने कुछ नहीं देखा अर्थात् आज मुझे कुछ भी ज्ञान न रहा। इसलिये सुषुप्ति में अज्ञान है, ऐसा अनुभव सिद्ध होता है और जागृत में भी पुरुष कहता है कि मैं ब्रह्मात्मा को नहीं जानता हूँ इस अनुभव का विषय भी अज्ञान है और स्वप्न का कारण भी निद्रा रूप अज्ञान है। ऐसा जो तीनों अवस्था में अज्ञान सो कारण शरीर है, अथवा स्थूल सूक्ष्म शरीर का जो हेतु हो, उसको कारण शरीर कहते हैं।

पंच कोश ।

प्रश्न—पाँच कोश कौन से हैं ।

उ०—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय, ये पाँच कोश हैं ।

प्रश्न—अन्नमय कोश किसे कहते हैं ।

उ०—अन्न के रस से उत्पन्न होकर और अन्न के रस से ही वृद्धि को प्राप्त होकर, पीछे अन्न रूप पृथ्वी के विषे लीन होता है, ऐसा स्थूल शरीर तिस को अन्नमय कोश कहते हैं ।

प्रश्न—प्राणमय कोश किसको कहते हैं ?

उ०—पंच कर्मेन्द्रिय सहित पंच प्राण को प्राणमय कोश कहते हैं ।

प्रश्न—मनोमय कोश किसे कहते हैं ?

उ०—पंच ज्ञानेन्द्रिय सहित मन को मनोमय कोश कहते हैं ।

प्रश्न—विज्ञानमय कोश किसे कहते हैं ?

उ०—पंच ज्ञानेन्द्रिय युक्त बुद्धि को विज्ञानमय कोश कहते हैं ।

प्रश्न—आनन्दमय कोश किसे कहते हैं ।

उ०—कारण शरीर रूप जो अविद्या तिस विषे स्थित जो प्रिय, मोद, प्रमोदरूप वृत्तियां तिसका नाम आनन्दमय कोश है ।

तीन-अवस्था ।

प्रश्न—तीन अवस्था कौनसी हैं ?

उ०—जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्था हैं ।

प्रश्न—जागृत अवस्था का क्या लक्षण है ?

उ०—चौवदा त्रिपुटियों से जिस विषे व्यवहार हो, वह जागृत अवस्था है ।

प्रश्न—चौवदा त्रिपुटी कौनसी हैं ?

उ०—चौवदा इन्द्रिय अध्यात्म हैं और उनके चौवदा देवता अधिदैव हैं और उनके चौवदा विषय अधिभूत हैं, इन तीनों के मिलान का नाम चौवदा त्रिपुटी है ।

प्रश्न—चौवदा त्रिपुटी पृथक् पृथक् किस प्रकार जाननी चाहिये ?

उ०—ज्ञान इन्द्रियों की त्रिपुटी ।

इन्द्रिय ।	देवता ।	विषय ।
अध्यात्म ।	अधिदैव ।	अधिभूत ।
(१) श्रोत्र ।	दिशा ।	शब्द ।
(२) त्वचा ।	वायु ।	स्पर्श ।
(३) चक्षु ।	सूर्य ।	रूप ।
(४) जिह्वा ।	वरुण ।	रस ।
(५) घ्राण ।	अश्विनीकुमार ।	गंध ।

कर्म इन्द्रियों की त्रिपुटी ।

इन्द्रिय ।	देवता ।	विषय ।
अध्यात्म ।	अधिदैव ।	अधिभूत ।
(६) वाक् ।	अग्नि ।	वाचा ।
(७) हस्त ।	इन्द्र ।	लेना देना ।

(८)	पाद ।	वामनजी ।	गमन ।
(९)	उपस्थ ।	प्रजापति ।	मूत्र वीर्य त्याग ।
(१०)	गुद ।	यमराज ।	मल त्याग ।

अंतःकरण की त्रिपुटी ।

	इन्द्रिय ।	देवता ।	विषय ।
(११)	मन ।	चन्द्रमा ।	संकल्प विकल्प ।
(१२)	बुद्धि ।	ब्रह्मा ।	निश्चय ।
(१३)	चित्त ।	वासुदेव ।	चिंतन ।
(१४)	अहंकार	रुद्र ।	अहंमम ।

इस प्रकार चौवदा त्रिपुटी समझना चाहिए ।

प्रश्न—जागृत अवस्था विषे जीवका स्थान, वाचा, भोग, शक्ति, गुण और उसका नाम क्या है ।

उत्तर—जागृत विषे जीवकाः—

(१) नेत्र स्थान है ।

(२) वैखरी वाचा है ।

(३) स्थूल भोग है ।

(४) क्रिया शक्ति है ।

(५) रजो गुण है ।

स्थूल शरीर का अभिमानी होने से विश्व नाम है ।

प्रश्न—स्वप्न अवस्था किसको कहते हैं ।

उ०—जागृत अवस्था विषे जो पदार्थ देखे, सुने भोगे हों, उनका संस्कार हितानामक नाड़ी जो कंठ विषे है उसमें पंच विषय आदि पदार्थों का निद्रा समय ज्ञान उत्पन्न होता है सो स्वप्न अवस्था है।

प्रश्न—स्वप्नावस्था में जीव का स्थान वाचा, भोग, शक्ति, गुण और तिस का नाम क्या है।

उ०—स्वप्न अवस्था विषे जीवका—

(१) कंठ स्थान है।

(२) मध्यमा वाचा है।

(३) सूक्ष्म (वासनामय) भोग है।

(४) ज्ञान शक्ति है।

(५) सत्व गुण है।

सूक्ष्म शरीर का अभिमानी होने से तेजस नाम है।

प्रश्न—सुषुप्ति अवस्था कौन सी है।

उ०—जब मनुष्य गाढ़ निद्रा से उठता है तब कहता है कि रात को मुझे कुछ भी प्रतीत नहीं हुआ। अर्थात् मैं कौन हूँ और कहां शयन कर रहा हूँ, ऐसी घोर निद्रा आई कि मुझे कुछ भी खबर नहीं रही मैं बड़े आनन्द से सोया। इस प्रकार आनन्द मय कोश के अनुभव का नाम सुषुप्ति अवस्था है। *"अहं किमपि न जानामि सुखेन मया निद्रानुभूयत इति सुषुप्त्यवस्था।"*

प्रश्न—सुषुप्ति अवस्था में जीवका स्थान, वाचा, भोग, शक्ति, गुण और नाम क्या है।

उ०—सुषुप्ति विषे जीव काः—

(१) हृदय स्थान है।

(२) पश्यंती वाचा है।

(३) आनन्द भोग है।

(४) द्रव्य शक्ति है।

(५) तमोगुण है।

कारण शरीर का अभिमानी होने से प्राज्ञ नाम है।

प्रश्न—अवस्था और पंच कोश से आत्मा अभिन्न है अथवा भिन्न है।

उ०—पंच कोशादि से आत्मा अत्यन्त भिन्न है।

प्रश्न—पंच कोश से आत्मा अत्यन्त भिन्न किस तरह से है?

उ०—जैसे-धन, जन, स्त्री, पुत्र, गृह आदि से मनुष्य भिन्न (जुदा) है अर्थात् यह मेरे हैं ऐसा मानता है। इसी प्रकार पंच कोशादि से भिन्न है अर्थात् मेरा शरीर है मेरे प्राण हैं, मेरा मन है, मेरी बुद्धि है, मेरा सुख है, मेरा ज्ञान है। इत्यादि पंच कोश से आत्मा भिन्न प्रतीत होता है।

ब्रह्मात्मा का स्वरूप लक्षण।

प्रश्न—आत्मा का स्वरूप क्या है।

उ०—आत्मा सत् चित् आनन्द स्वरूप है।

प्रश्न—सत् किसे कहते हैं।

उ०—जिसका तीन काल में नाश न हो अर्थात् भूत, भविष्य, वर्त्तमान काल त्रय में एक रस रहे सो सत् है।

प्रश्न—चित् किसे कहते हैं।

उ०—जो ज्ञान स्वरूप हो, अर्थात् त्रय शरीर अवस्था पंच कोश तथा समस्त घट पटादि पदार्थों का जानने वाला और अनुभव रूप साक्षी चेतन स्वरूप ही चित् पद का वाच्य है।

प्रश्न—आनन्द किसे कहते हैं?

उ०—सम्पूर्ण दुःखों से रहित जो निरतिशय सुख स्वरूप हो तिसका नाम आनन्द है।

प्रश्न—जीवात्मा और परमात्मा भिन्न (जुदे) हैं अथवा अभिन्न हैं।

उ०—अज्ञान अवस्था में जीवात्मा ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है परन्तु ज्ञान दशा में अर्थात् मोक्ष अवस्था में ब्रह्म से अभिन्न (एक) रूप है।

प्रश्न—जीव ब्रह्म की ऐक्यता में हेतु और प्रमाण क्या है?

उ०—सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा है और सत् चित् आनन्द रूप ब्रह्म है इसलिये दोनों समान लक्षण वाले होने से ब्रह्म ही आत्मा है और आत्मा ही ब्रह्म स्वरूप है अतः सच्चिदानन्द लक्षण ही जीव ब्रह्म की ऐक्यता में मुख्य हेतु है इसी हेतु को लेकर जीव ब्रह्म की ऐक्यता को कोटि प्रमाण अनुसंधान करते हैं ऐसा वेदान्त का डिंडिम* (ढंढोरा) है।

प्रश्न—जीव ब्रह्म की ऐक्यता बोधक श्रुति वाक्य कौन से हैं?

---

* सच्चिदानन्द रूपत्वाद्ब्रह्मैवात्मान संशयः।
प्रमाण कोटि संधानादिति वेदान्त डिंडिमः॥

उ०—"*योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि*" "*प्रज्ञानं ब्रह्म*" "*अहं-ब्रह्मास्मि*" "*अयमात्मा ब्रह्म*" "तत्त्वमसि" इत्यादि एकता बोधक वेद के महा वाक्य हैं।

प्रश्न—"*तत्त्वमसि*" इस वाक्य में कितने पद हैं?

उ०—"*तत् त्वं*" *असि*, ये तीन पद हैं।

प्रश्न—"*तत्*" पद का वाच्य अर्थ और लक्ष्य अर्थ क्या है?

उ०—विराट्, हिरण्यगर्भ और अव्याकृत इन त्रय शरीर रूपी माया विशिष्ट चैतन्य (ईश्वर) तत् पद का वाच्य अर्थ है। और माया उपाधि रहित शुद्ध ब्रह्म तत् पद का लक्ष्य अर्थहै।

प्रश्न—"*त्वं*" पद का वाच्य अर्थ और लक्ष्य अर्थ क्या है?

उ०—स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर रूपी अविद्या विशिष्ट चैतन्य (जीव) "त्वं" पद का वाच्य अर्थ है और स्थूल सूक्ष्म कारण उपाधि रहित जीव साक्षी (तुरीय) कूटस्थ शुद्ध आत्मात्वं पद का लक्ष्य अर्थ है।

प्रश्न—"*तत्त्वमसि*" वाक्य में स्थित असिपद का क्या अर्थ है।

उ०—असि (है) इस पद का अर्थ एकता को ग्रहण कराता है अर्थात् तत् पद का लक्ष्य (ब्रह्म) और त्वं पद का लक्ष्य (आत्मा) सामानाधिकरण्य* से एक रूप है यही असि पद का अर्थ है।

---

* भिन्न अर्थ युक्त (अपर्याय) पदों की समान विभक्ति के बल से एक ही अर्थ विषे जो प्रवृति सो सामानाधिकरण्य है।

प्रश्न—ब्रह्म और आत्मा की ऐक्यता विषय में दृष्टान्त क्या है।

उ०—जैसे—घटाकाश और मठाकाश वास्तव में एक हैं। जैसे गंगा नदी के अन्दर का जल और लोटे में भरा हुआ गंगा जल स्वरूप से एक हैं तथा महा समुद्र का जल और नदी नाले का जल एक रूप है।

जैसे बड़े गैस (लालटैन) के भीतर का प्रकाश रूप अग्नि और छोटे दीपक की अग्नि स्वरूप से एक है।

जैसे बहुत बड़ा अग्नि का ढेर और एक छोटा अग्नि का चिंगार (अंगार) वास्तव में एक है। जैसे बड़े देश का राजा और एक छोटे ग्राम का स्वामी (ठाकुर) मनुष्य रूप से एक है। इस प्रकार ब्रह्म आत्मा की एकता विषय में अनेक दृष्टान्त हैं।

प्रश्न—आत्मा का साक्षात्कार कैसे होता है?

उ०—आत्म साक्षात्कार के लिये * श्रुति ने तीन साधन मुख्य बताये हैं। उनके द्वारा आत्मा का साक्षात् (प्रत्यक्ष) होता है।

प्रश्न—आत्म साक्षात्कार के तीन साधन कौनसे हैं।

उ०—श्रवण, मनन और निदिध्यासन।

प्रश्न—श्रवण का क्या लक्षण है।

उ०—सम्पूर्ण वेदान्त वाक्यों के तात्पर्य निश्चय का नाम ब्रह्म वादियों ने † श्रवण कहा है।

---

* आत्मा वा अरेद्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। इति श्रुति। (बृहउ०)

† सर्व वेदान्त वाक्यानां मयितात्पर्य निश्चयम्। श्रवणं नाम तत्प्राहुः सर्वेते ब्रह्म वादिनः॥

प्रश्न—मनन का क्या लक्षण है।

उ०—लोह मणि आदि दृष्टान्त रूप युक्ति से जैसे कि—चुम्बक की शक्ति से *लोहा भ्रमण करता है तैसे आत्मा की सत्ता से सब जगत् भ्रमण करता है इस प्रकार आत्मा को वारंवार चिंतन करे अर्थात् वाक्यार्थ के विचार का ही † नाम मनन कहा है।

प्रश्न—निदिध्यासन का क्या लक्षण है।

उ०—मोह अहंकार रहित सब में सम बुद्धि संगवर्जित और शांति आदि साधनयुक्त होकर निरन्तर ध्यान योग से आत्मा में आत्मा को देखना उसको ‡ निदिध्यासन कहते हैं। उपरोक्त श्रवण, मनन आर निदिध्यासन त्रिगुण भेद से तीन-तीन प्रकार के होते हैं यथा—तमोगुण बुद्धि युक्त, श्रवण, मनन, निदिध्यासन तामस कहे जाते हैं और रजोगुण बुद्धि युक्त श्रवण मनन निदिध्यासन राजस कहे जाते हैं तथा केवल सत्त्व गुण बुद्धि युक्त श्रवणादि सात्विक कहे जाते हैं इस रीति से ज्ञान यज्ञ की नव शाखाएँ होती हैं। "समस्त धर्म शाखाओं में ज्ञान

---

* लोह मण्यादि दृष्टान्त युक्ति भिर्यद्विचिन्तनम्।
† तदेव मननं प्राहुर्वाक्यार्थ स्योप बृंहणम्॥
(शि० गी०)

‡ निर्मोहो निरहंकारः सम संग विवर्जितः।
सदा शान्त्यादि युक्तः सन्नात्मन्यात्मानमीक्षते॥
यत्सदा ध्यान योगेन तन्निदिध्यासनं स्मृतम्।
(शि० गी०)

यज्ञ सब की पराकाष्ठा है अर्थात् समस्त वैदिक कर्मों का उद्देश्य आत्मज्ञान की प्राप्ति है। ज्ञानयज्ञ में अखिल कर्मों का समावेश श्री भगवान् ने *गीताजी में कथन किया है।"

प्रश्न—आत्मज्ञान का फल क्या है ?

उ०—आत्मज्ञान से मनुष्य-अहंता ममता रूप मोह माया आदि सब पाशों से छूट जाता है तथा अविद्या, अस्मिता रागद्वेष और अभिनिवेश यह सब क्लेश तिसके नाश हो जाते हैं। क्लेशों के क्षीण होने से मनुष्य जन्म मृत्यु रूपी महा दुःख से छूट कर अजर अमर ब्रह्म रूप हो जाता है इस प्रकार आत्म ज्ञान का फल †श्रुति (वेद) ने कथन किया है।

इति ज्ञान यज्ञ।

पूर्वोक्त साधारण धर्म की मुख्य चौवीस शाखाएँ हैं यथा—दान की ३ तप की ३, कर्म की ६, उपासना की ९ और ज्ञान की ३, ये चौवीस शाखाएँ त्रिगुण भेद से ७२ प्रकार की होती हैं।

अहो! ये ‡चतुर्विंशति धर्माङ्ग सर्व जीव हित साधक कहे

---

* सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परि समाप्यते ॥

† ज्ञात्वा देवं सर्व पाशापहानिः क्षीणैः क्लेशै र्जन्म मृत्यु प्रहाणिः ।
य एतद्वि दुर मृतास्ते भवन्ति इत्यादि श्रुतिः ॥

‡ चतुर्विंशति रेतानि धर्म्मस्य प्राकृतान्य हो ।
अङ्गानि सर्व जीवानां साधकानि हितस्य तु ॥
विभिन्नरुचयो लोका नाना शक्ति मया यतः ।
अतः साधारणो धर्म्मः सर्व प्राणिहिता वहः ॥
(धी० गी० ४, ४५, ४६)

गये हैं। क्योंकि संसार में मनुष्यों की रुचि विभिन्न है और सामर्थ्य भी विभिन्न है। इस कारण साधारण-धर्म-सर्व प्राणि-हितप्रद है। यदि इन २४ धर्माङ्गों में से किसी अङ्ग का भी पूर्ण रूप से पालन किया जाय तो निःसन्देह मनुष्य मोक्ष गति को प्राप्त होता है।

इति श्री स्वामी अचलराम विरचित हिन्दू धर्म रहस्यान्तर्गत साधारण धर्म शाखा समाप्त।

❀ ॐ तत्सत् ❀

विशेष-धर्म पाद

साधारण धर्म का रहस्य बतलाकर अब विशेष धर्म का रहस्य कथन किया जाता है, विशेष धर्म का स्वरूप भी अति विचित्र है अर्थात् विशेष धर्म भी अनेक शाखा प्रशाखाओं से शोभायमान- है जिसका सारांश यथा क्रम आगे वर्णन किया जाता है।

प्रश्न—विशेष धर्म का क्या लक्षण है?

उ०—जिस धर्म का लक्षण आर्य जाति के सिवाय अन्य जाति में न पाया जाय वह विशेष धर्म है अर्थात्—वर्णाश्रम* धर्म को विशेष धर्म कहते हैं।

आर्य्य जाति के लक्षण।

प्रश्न—आर्य्य जाति का क्या लक्षण है?

उ०—निरुक्त शास्त्र में यास्क मुनि ने आर्य्य-जाति का लक्षण वर्णन करते समय कहा है कि—"*आर्य्य ईश्वर पुत्रः*" अर्थात् ईश्वर पुत्र को आर्य्य कहते हैं।

प्रश्न—इस संसार में सभी जीव ईश्वर के पुत्र (अंश) हैं तब एक आर्य्य ही ईश्वर पुत्र है यह कैसे कहा, क्या अन्य मनुष्य ईश्वर पुत्र नहीं हैं?

---

* विप्राः! विशेष धर्म्मस्य स्वरूपं महदद्भुतम्।
यथा वार्णाश्रमो धर्म्म आर्य्यजातेः शुभावहः॥
(धी० गी० ४, ५५)

उ०—जैसे एक मनुष्य के बहुत से पुत्र होते हुए भी जो पुत्र पिता की सर्व आज्ञाओं का पालन करता है, वही वास्तव में पुत्र कहा जाता है। ठीक इसी प्रकार सब प्रजा ईश्वर की होते हुए भी मनुष्य जाति में जो जाति परम पिता परमेश्वर की आज्ञारूप धर्म के सम्पूर्ण अङ्ग उपाङ्गों का सनातन से पालन करती है, इसलिये वह आर्य्य जाति ही ईश्वर पुत्र कही जाती है।

प्रश्न—आर्य्य जाति के विशेष लक्षण क्या हैं?

उ०—जो जाति चतुर्वर्ण आश्रम से युक्त है वही आर्य्य जाति है। तथा न्याय पथ पर चलने वाली सदाचारशील, एवं कर्त्तव्य परायण, अकर्त्तव्य विमुख और शुद्ध आचार विचार में स्थित है वही आर्य्य जाति है, इत्यादि आर्य्य जाति के विशेष लक्षण हिन्दू* शास्त्रों में कथन किये हैं। तात्पर्य यह है कि आर्य्य-जाति इस लोक के वैषयिक विलास को तुच्छ स्वप्नवत् समझकर अपने जीवन को पारलौकिक उन्नति में व्यय करती है। आर्य्य जाति के सर्व कर्त्तव्यों का फल ईश्वर अर्पण होता है, इसलिये आर्य्य जाति के समस्त कर्मों के मूल में अध्यात्म लक्ष्य बना रहता है अर्थात् आर्य्य जाति के समस्त कर्मों का उद्देश्य सच्चिदानन्द

---

* "उभयो पेताऽऽर्य्य जातिः" (मीमां० द०)
"अर्हु सदा चारि तुं योग्यः इति आर्य्यः"
कर्त्तव्यमाचरन् कार्यं मकर्त्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य्य इति स्मृतेः ॥ (न्या० मा०)
वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया। इत्यादि।

परम पिता परमात्मा की प्रसन्नता तथा प्राप्ति के लिये होता है। इसी कारण से आर्य्य जाति को ईश्वर ने अपना ज्येष्ठ श्रेष्ठ पुत्र समझ कर धर्म का पूर्ण अधिकार दिया है।

आर्य्य जाति और उसके धर्म्म का गौरव।

भगवती कहती है कि—मेरी धर्म* शक्ति की पूर्ण षोडश कलाएँ आर्य्य जाति के स्वधर्म में विद्यमान है। इसलिये आर्य्य जाति जगत् की अन्यान्य जातियों की आदि शिक्षक तथा गुरु है और आर्य्य (हिन्दू) धर्म अन्यान्य धर्मों का जनक तथा पालक है। तात्पर्य्य यह है कि संसार भरके जितने उपधर्म हैं, उनमें साधारण धर्म के कुछ उपाङ्ग "धृति† क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध।" इत्यादि धर्म के कुछ लक्षण पाये जाते हैं। वे सब सनातन वैदिक धर्म की कृपा ही का फल समझना चाहिये। सनातन वैदिक धर्म साधारण धर्म के पूर्ण विज्ञान और विशेष आदि धर्मों के अत्यन्त सूक्ष्म विचारों से पूर्ण है, इसी कारण वैदिक धर्म अभ्रान्त, सर्व अङ्गों से पूर्ण और सर्व उपधर्मों का कल्याण कारक है। अन्य उपधर्मों में विशेष धर्म का विकाश न होने के कारण उनमें अधिकार और अधिकारी भेद वर्ण और

---

* धर्म्म शक्तेर्हि मे पूर्णाः कलाः षोडश संख्यकाः।
आर्य्य जातीय धर्म्मेषु विद्यन्ते विबुधर्षभाः!॥
आर्य्य जातिरतोऽन्यासामस्याद्यः शिक्षको गुरुः॥
आर्य्य धर्म्मोऽन्य धर्म्माणां जनकः पालकोऽस्ति च।
(श० गी० २, ३६, ३७)

† धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥
(मनु० ६, ६२)

आश्रम भेद, स्वर्ग और अपवर्ग का भेद, तथा पुरुष और स्त्री के जिम्मेवारी का भेद, आचार और विचार का भेद, अध्यात्मिक और आधिभौतिक उन्नति का भेद इत्यादि सूक्ष्म विज्ञान के विषय उनमें नहीं हैं। जैसे गड़रिया एक ही लाठी से सब भेड़ों को हांकता है उसी प्रकार उपधर्मों के आचार्य्यों ने एक ही प्रकार के नियमों से सब प्रकार के अधिकारियों को एक ही मार्ग पर चलाने का प्रयत्न किया है। परन्तु एक ही प्रकार का धर्म्मानुशासन सब अधिकारियों के लिये उपयोगी कदापि नहीं हो सकता। "सनातन वैदिक धर्म में यथाधिकार, कर्म, उपासना, ज्ञान तथा वर्णाश्रम रूप विशेष धर्म आदि का आदेश किया गया है। इसीलिये आर्य्य धर्म सर्व लोक हितकारी सर्वमान्य और सार्वभौम (चक्रवर्ती राजा) है।

अनार्य जाति के लक्षण।

प्रश्न०—अनार्य जाति का क्या लक्षण है।

उ०—जो जाति आर्य्य जाति के लक्षणों से विपरीत है, वही जाति हिन्दू शास्त्र के अनुसार अनार्य जाति है। (*तद्विपरीताऽनार्य्या* ॥ पूर्वमी०) जिस जाति के किसी कार्य में अध्यात्म लक्ष्य नहीं है, जो जाति मुक्ति को लक्ष्य करके कार्य नहीं करती है, किन्तु स्थूल शरीर के वैषयिक विलास के लिये ही कार्य करती है वही जाति अनार्य है।

जो जाति पारलौकिक उन्नति को भूल कर इस स्थूल संसार की उन्नति में ही अपने समस्त जीवन का उद्देश समझती है वही अनार्य जाति है। जिस जाति में चतुर्वर्णाश्रम धर्म और सदाचार नहीं है वही अनार्य जाति है इत्यादि अनार्य जाति के लक्षण हैं।

आर्य्य जाति से अन्यान्य जातियों की उत्पत्ति।

प्रश्न—संसार में सब से प्राचीन जाति कौनसी है?

उ०—सृष्टि के आदि काल से पृथ्वीपति आर्यजाति ही सबसे प्राचीन है। अर्थात् आर्य जाति के भीतर से ही संसार भर की सब मानव जातियां निकली हैं। आर्य जाति के प्राचीन इतिहास मनन करने से पता लगता है कि स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत ने पृथ्वी को सप्त द्वीप में विभक्त किया था। यथाः—जम्बु, प्लक्ष, पुष्कर, क्रौञ्च, शाक, शाल्मली और कुश। इन्हीं सप्त द्वीपों के अन्तर्गत आज कल के एशिया और यूरोप आदि महा देश हैं। राजा प्रियव्रत ने इन्हीं सप्त द्वीपों को अपने पुत्रों के लिये विभक्त कर दिया था। अतः आर्य्य शास्त्र के अनुसार प्राचीन काल में ये ही सप्त द्वीप आर्य्य राजाओं के अधिकार भुक्त थे, आर्य्य इतिहास से यही सिद्धान्त निकलता है। प्रसिद्ध प्राचीन तत्त्ववेत्ता पण्डित ब्रुगस्वे साहब ने कहा है कि—"अति प्राचीन काल में सुयेज क्यानाल पार होकर आर्य्य जाति के एक दल ने नील नद के तीर पर उपनिवेश स्थापन किया था।" कर्नल अलकाट साहब ने कहा है कि "भारतवर्ष से ही आर्य्यगणों ने मिश्र (Egypt) देश में जाकर अपनी सभ्यता और शिल्पकला का विस्तार किया था।" "कुरुक्षेत्र के युद्ध के पहिले पाण्डवों ने दिग्विजय करते हुए जिन जिन देशों पर अधिकार स्थापन किया था महाभारत के सभापर्व में उन सबों का वर्णन है। प्रथम यात्रा में चीन, तिब्बत, मङ्गोलिया, पारस्य आदि देश और द्वितीय यात्रा में अरब मिश्र आदि देशों पर अपनी विजय पताका पाण्डवों ने

फहराई थी । जिस समय पृथ्वी के अधीश्वर आर्य्यराजा गण सर्वत्र अपना अधिकार विस्तार करके सर्वत्र ही वास करते थे, उस समय से क्रमशः उनमें से बहुत लोग उन देशों में ही अपना स्थायी वास स्थान बनाने लगे। पश्चात् जब आर्य्य जाति का गौरव पृथ्वी के अन्यान्य प्रान्तों में नष्ट होकर केवल भारत भर में ही रह गया तब जो लोग अन्यान्य देशों में बस गये थे उनका सम्बन्ध आर्य्य जाति के साथ नष्ट होगया । वे सब उधर ही रह कर धीरे धीरे अपने आर्य्य जातीय आचार व्यवहार से गिर गये और अन्य जाति कहलाने लगे परन्तु उनकी भाषा आर्य्य भाषा होने के कारण यद्यपि नवीनभाव और जीवन के साथ उसमें कुछ परिवर्तन होगया तथापि पूर्ण परिवर्तन नहीं हो सका। अतएव भारत के सिवाय अन्यान्य देशों की भाषाओं में भी संस्कृत भाषा के साथ सादृश्य देखने में आता है यथा:—

संस्कृत	मीडी	यूनानी	लैटिन	अंगरेजी	फारसी
पितृ	पतर	पाटेर	पटेर	फादर	पिदर
मातृ	मतर	माटेर	मेटर	मदर	मादर
भ्रातृ	ब्रवर	फ्राटेर	फ्रेटर	ब्रदर	ब्रादर
नाम	नाम	ओनोमा	नामेन	नेम	नाम
अस्मि	अह्मि	ऐमी	सम	ऐम	अम

उपर्युक्त इन शब्दों की समानता ही संस्कृत भाषा के सादृश्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। तात्पर्य संस्कृत शब्दों का अपभ्रंश ही उपर्युक्त सब भाषाओं के शब्द हैं इसी प्रकार क्रिया लोप करके आर्य्य जाति से भिन्न जातियां बनने के विषय में मनुस्मृति का प्रमाण* है। मनुजी कहते हैं कि—उपनयन आदि क्रिया लोप और वेदाध्ययनाध्यापन के अभाव से नीचे लिखी हुई जातियों ने क्रमशः शूद्रत्व प्राप्त किया है। यथा—पौंड्रक, आंड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पन्हव, चीन, किरात, दरद और खश। ये ब्राह्मणादि चार वर्णों के बीच में से क्रिया लोप के कारण जो लोग वहिष्कृत होकर नाम से जाति कहलाते हैं वे आर्य्य भाषा बोलें या म्लेच्छ भाषा बोलें इनकी गणना दस्युओं में होती है। इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म्मोक्त क्रिया लोप होने के कारण प्राचीन हिन्दू जाति से बहुत सी अन्य जातियां बन गई हैं।

आर्य्य और हिन्दू शब्द का निर्णय।

प्रश्न—भारतवर्ष की आर्य्य जाति का नाम "हिन्दू" कब से पड़ा और इसका अर्थ क्या है। संस्कृत साहित्य में हिन्दू शब्द का कहीं उल्लेख नहीं, न तो वेद, उपनिषद में, न

---

* शनकैस्तु क्रिया लोपादिमाः क्षत्रिय जातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणाऽदर्शनेन च॥
पौण्ड्रका श्चौड्रद्रविड़ाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पल्हवाश्चीनाः किराताः दरदाः खशाः॥
मुख बाहूरूपाज्जानां या लोके जातयो वहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्य्य वाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥
(मनु० १०, ४३, ४४, ४५)

स्मृति में और न पुराणों ही में इस शब्द का कहीं पता है। फिर यह कहां से आया और इसमें कौनसी ऐसी विशेषता देख कर इतनी बड़ी एक सुसभ्य आर्य्य जाति ने उसे ग्रहण कर लिया ?

उ०—यद्यपि श्रुति स्मृति में "हिन्दू" शब्द का कहीं उल्लेख नहीं तथापि मेरु तंत्र में एक स्थान पर हिन्दू शब्द आया है जिसका अर्थ यह है "*हीनं च दूपयेत्येव हिन्दू रित्युच्यते प्रिये*" हीनता (अनार्य्य जाति) की विरोधी अर्थात् उच्च गौरवान्वित जाति ही को हिन्दू जाति कहते हैं। इस प्रमाण से हिन्दू शब्द बहुत ही गौरवान्वित शब्द है। अतः हिन्दू शब्द आर्य्य जाति का ही बोधक समझना चाहिये।

प्रश्न—फारसी में तो हिन्दू काफ़िर को कहते हैं यथा—गयासुल्लोग़ात नामक फ़ारसी भाषा की किताब में हिन्दू शब्द का अर्थ ऐसा लिखा है कि "*हिन्दू दर महाविरे फ़ारसियां बमानी दुज़्द व रहाज़न मी आयद*"।

इसमें हिन्दू शब्द का अर्थ काफिर और डाकू किया गया है। यदि हिन्दू शब्द का अर्थ काफिर, चोर गुलाम ही है तो उसे भारतवासियों ने अपने उत्तम आर्य्य नाम के स्थान पर कैसे स्वीकार कर लिया ?

उ०—हमें गयासुल्लोग़ात का अर्थ द्वेष वश लिखा जान पड़ता है। तो क्या फ़ारसी के हिन्दू शब्द का अर्थ काफिर डाकू ही में हमारा नाम हिन्दू पड़ा है। नहीं, भिन्न २ भाषाओं में एक ही शब्द के भिन्न २ अर्थ होते हैं जैसे 'नीम' शब्द ही को लीजिये। फ़ारसीमें नीम

शव्द का अर्थ आधा है और हिन्दी में नीम एक वृक्ष का नाम है। "नीम हकीम" कहने से यह अर्थ नहीं लगा लेना चाहिये कि "नीम" वृक्ष ही हकीम है। यदि हमारा नाम हिन्दू किसी अच्छे अर्थ में रक्खा गया है तो किसी अन्य भाषा में इस शव्द का अर्थ चोर डाकू होने से हम चोर डाकू नहीं हो सकते। हां, यदि किसी ने चोर डाकू और काफ़िर ही के अर्थ में हमारा नाम हिन्दू रक्खा है और हमने उसे स्वीकार कर लिया तो हमारे लिये अवश्य ही कलङ्क की वात है। परन्तु हमारा हिन्दू नाम नया नहीं, हिन्दू नाम तो वहुत प्राचीन और गौरवान्वित है।

प्रश्न—बहुत से लोग कहते हैं कि इस देश में मुसलमानों के आने से आर्य जाति का नाम हिन्दू पड़ा है अर्थात् मुसलमानों ने आर्य जाति का नाम हिन्दू और आर्य देश का नाम हिन्दुस्थान रक्खा है?

उ०—मुसलमानों का इस देश में जब नामोनिशान भी नहीं था उसके पहिले ही हमारे देश का नाम हिन्द और हमारा नाम हिन्दू महर्षि व्यास ने रक्खा है। आज से पांच हजार वर्ष पहिले पारसियों की मुख्य धर्म पुस्तक दसातीर में हमारे देश का नाम "हिन्दू" लिखा मिलता है। उसमें लिखा है कि—"*अकनू विरहमने व्यास नाम अज़ हिन्द आमद वसदान के अकिल चुनानस्त*" (जरतुश्त की ६५वीं आयत) अर्थात् व्यास नाम का एक ब्राह्मण हिन्द से आया जिसके समान कोई पंडित नहीं। फिर उसमें लिखा है कि "*चूं व्यास हिन्दी वलख आमद। गस्तस्प जरतुश्तरा वखवाँद*" (१६३ वीं आयत) जव

हिन्द का रहने वाला व्यास बलख आया तब (ईरान के राजा) गस्तास्प ने (व्यास से बात चीत करने के लिये) जरतुश्त को बुलाया । उसके पूछने पर व्यास ने कहा कि "*मनमरदे अम हिन्दी नजादे*" मैं हिन्द में पैदा हुआ एक पुरुष हूँ आगे फिर लिखा है कि:—"*बंव हिन्द बाज गश्ते*" फिर वह हिन्द को लौट गया । इन प्रमाणों से साबित होता है कि महर्षि व्यास के समय में ईरान वाले इस देश को 'हिन्द' कहते थे । व्यास ने स्वयं अपने देश का नाम हिन्द और अपने को हिन्द का निवासी हिन्दू कहा है ।

यह वैसी ही बात है जैसे कि आज कल हम लोग अंग्रेजों-को समझाने के लिये उनके सामने अपने देश का नाम इण्डिया और अपना नाम इण्डियन बतलाते हैं । इसी प्रकार व्यास ने ईरान वालों के सामने अपने को हिन्द का रहने वाला हिन्दू कहा है इत्यादि प्रमाणों से मुसलमानों के आने से बहुत पहिले ही हमारा नाम हिन्दू था, मुसलमानों ने हमारा नाम हिन्दू नहीं रक्खा है किन्तु हिन्दू शब्द प्राचीन और गौरवान्वित है अतः हिन्दू और आर्य शब्द एकार्थवाचक समझना चाहिये ।

वर्ण धर्म का उद्देश्य ।

प्रश्न—वर्ण कितने हैं ?

उ०—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र, ये चार वर्ण हैं ।

प्रश्न—यह चार वर्ण किसने बनाये हैं ?

उ०—गुण कर्म के विभागानुसार ईश्वर से ही चारों वर्ण रचे गये हैं। ऐसा गीता* में लिखा है।

प्रश्न—किस अर्थ के लिये ईश्वर ने चारों वर्ण बनाये हैं?

उ०—मनुष्य-समाज की रक्षा के लिये परमेश्वर ने वर्ण विभाग किया है।

प्रश्न—वर्णों से समाज की रक्षा कैसे होती है?

उ०—जैसे व्यष्टि शरीर की रक्षा-मस्तक हस्त, उदर और चरण, इन चार अङ्गों द्वारा होती है अर्थात् दिमाग सोच समझ कर शरीर रक्षा का उपाय निर्णय करता है, हस्त उसका उपकरण (सामग्री-संग्रह) तथा उसकी बाधाओं को दूर करता है, उदर संग्रहीत पदार्थों को पका कर सब शरीर में शक्ति पहुँचाता है और चरण सेवक रूप से सारे शरीर को वस्तु संग्रह में सहायता करता है। ठीक उसी प्रकार वेद-ने† बताया कि समाज रूपी विराट् शरीर के चार वर्ण चार अङ्ग रूप हैं। ब्राह्मण समाज का मस्तक (मस्तिष्क) हैं, क्षत्रिय भुजा हैं, वैश्य ऊरू हैं और शूद्र पाँव हैं। अतः चारों वर्णों को अपने समाज रूपी शरीर की रक्षा में

---

* चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः। (४, १३)

† ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः॥
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांशूद्रो अजायत॥

(य० ३१, ११)

तत्पर रहना चाहिये। गीता* में श्री भगवान् ने कहा है कि "जो मनुष्य समाज की सेवा के लिये अपने अपने स्वाभाविक कर्म में तत्पर रहता है, वह संसिद्धि को प्राप्त होता है। जिस प्रकार अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होता है उसको सुन। जिस परमात्मा से सर्व सृष्टि की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सर्व संसार व्याप्त हो रहा है, उस परमेश्वर को अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा पूज कर मनुष्य परम गति को प्राप्त होता है। यही वर्ण धर्म का उद्देश्य है।"

(ब्राह्मण लक्षणम्)

प्रश्न—ब्राह्मण के क्या लक्षण हैं ?

उ०—वेद पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना, दान लेना तथा मन को वश में रखना, इन्द्रियों को विषयों की ओर से रोकना, तप करना, पवित्र रहना, सन्तोष रखना, क्षमा करना, सरलता, विवेक, दया भगवन्निष्ठा और सत्य यह सब ब्राह्मणों के †लक्षण हैं।

---

* स्वे स्वे कर्मण्य भिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्व कर्म निरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ॥
यतः प्रवृत्ति र्भूतानां येन सर्व मिदं ततम् ॥
स्व कर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥ (१८, ४५, ४६)

† अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ (मनु १, ८८)
शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षांतिरार्जवम् ।
ज्ञानंदयाऽच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्म लक्षणम् ॥ (भा० ७, ११, २१)

(क्षात्र-लक्षणम्)

प्रश्न—क्षत्रिय के क्या लक्षण हैं ?

उ०—प्रजाओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, विषय (नाच गाना) आदि में चित्त न लगाना। तथा शूरता प्रभाव, धीरज, तेज, उदारता, मन को वश में रखना, क्षमा, साधु ब्राह्मणों का सत्कार और अनुग्रह (अर्थात्-न्याय करना) इत्यादि क्षत्रियों के *लक्षण शास्त्र में कथन किये गये हैं।

(वैश्य-लक्षणम्)

प्रश्न—वैश्य वर्ण के क्या लक्षण हैं ?

उ०—गो आदि पशुओं की रक्षा करना, कृषि करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, वाणिज्य और सूद लेना तथा देवता, गुरु और भगवान की भक्ति, धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग के द्वारा सन्तुष्ट होना, आस्तिकता, नित्य उद्योग और चतुरता यह सब वैश्यों के †लक्षण हैं।

---

* प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेवच।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः। (मनु० १, ८९)
शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्म जयः क्षमा।
ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्र लक्षणम् ॥(भा० ७, ११, २२)

† पशूनां रक्षणं दान मिज्याध्ययनमेव च।
वाणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ (मनु०)
देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्ग परिपोषणम्।
आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुण वैश्य लक्षणम् ॥(भा० ७, ११, २३)

(शूद्र-लक्षणम्)

प्रश्न—शूद्र के क्या लक्षण हैं ?

उ०—नम्रता, स्नानादि से शुद्धता, निष्कपट भाव से स्वामी की सेवा करना, वेद मंत्रों से रहित यज्ञ करना, चोरी न करना, सत्य बोलना और गो ब्राह्मण की रक्षा करना, यह सब शूद्रों के *लक्षण हैं।

प्रश्न—यदि अन्य वर्ण के पुरुष में अन्य वर्ण का लक्षण पाया जाय तो उसको किस वर्ण का मानना चाहिये ?

उ०—जिस पुरुष के वर्ण का प्रकाशक जो लक्षण शास्त्र ने कहा है, वह लक्षण यदि अन्य वर्णों के पुरुषों में भी दिखाई दें तो उसको उसी वर्ण का समझना चाहिये। ऐसा †भागवत में लिखा है। तथा महाभारत शान्ति पर्व (१८९-१-८) में भी कहा है कि—ब्राह्मण के गुण कर्म यदि शूद्र में दिखाई दें और ब्राह्मण में न पाये जायँ तो ऐसी दशा में शूद्र शूद्र नहीं और ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं होगा। तात्पर्य यह है कि-नीच वर्ण उच्च वर्ण का कर्म करे, तो वह कर्म से उच्च वर्ण का ही कहा जायगा और जन्म से निज वर्ण का ही रहेगा। इसी प्रकार यदि उच्च वर्ण नीच वर्ण का कर्म करे

---

* शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ।
अमन्त्र यज्ञोह्यस्तेयं सत्यं गोविप्र रक्षणम् ॥
(भा० ७, ११, २४)

† यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्ते-नैव विनिर्दिशेत् ॥ (७, ११, ३५)

तो वह कर्म से नीच वर्ण का ही कहा जायगा चाहे वह जन्म से ब्राह्मण हो, परन्तु वास्तव में वह ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। कर्म रहित ब्राह्मण को *मनुजी ने केवल नामधारी ब्राह्मण कहा है जैसे काठ का हाथी तथा चर्म का बना हुआ मृग नकली है उसी प्रकार बिना पढ़ा हुआ ब्राह्मण भी नाम मात्र का ब्राह्मण है। जिस प्रकार स्त्रियों में नपुंसक और गौओं में गौ तथा अज्ञानी में दान निष्फल है, उसी प्रकार श्रौत स्मार्त्त कर्मों से रहित बिना पढ़ा हुआ ब्राह्मण भी कथनमात्र है।

इति श्री स्वामी अचलराम विरचित हिन्दू-धर्म
रहस्यान्तर्गत वर्ण धर्म समाप्त।

(आश्रम धर्म का उद्देश्य।)

प्रश्न—आश्रम धर्म का क्या उद्देश्य है?

उ०—इस संसार में दो मार्ग हैं, एक प्रवृत्ति और दूसरा निवृत्ति मार्ग है। प्रवृत्ति मार्ग जन्म मरणादि रूप बंधन का कारण है और निवृत्ति मार्ग मुक्ति का हेतु है। श्रुति में लिखा

---

* यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्म मयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥
यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गविचाफला।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः॥

मनु० २, १५७, ५८

है कि—"*न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागे नैके अमृतत्व मानशुः*" ॥ (कै० उ०)

मनुष्य न कर्म करके न प्रजा (संतति) करके न धन करके ही मोक्ष को प्राप्त होता है किंतु धन पुत्रादि के त्याग करने ही से मोक्ष को प्राप्त होता है। इसी प्रकार स्मृति में कहा है कि—"*निवृत्तः परितुष्टश्च सुखी पूर्ण मनोरथः*"। अर्थात् सांसारिक विषय भोगों से निवृत्त पुरुष ही सदा संतुष्ट तथा सुखी और पूर्ण मनोरथ नाम आप्त काम है। इत्यादि शास्त्र प्रमाणों से यही निश्चय होता है कि—निवृत्ति मार्ग ही श्रेयस्कर है। परंतु मनुजी कहते हैं कि "*प्रवृत्ति रेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महा फला*"। मनुष्यों की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही विषयों की ओर है, इसलिये वैराग्य के विना एकाएक सब मनुष्य विषयों का त्याग नहीं कर सकते अतः स्वाभाविक विषय प्रवृत्ति से धीरे धीरे मन को हटा कर निवृत्ति की ओर लेजाना ही मनुष्य का परम कर्त्तव्य है, आश्रम धर्म इसी कर्त्तव्य के उपायों को बतलाता है। इसी लिये निवृत्ति महाव्रत का श्रीगणेश ब्रह्मचर्य आश्रम से ही आरम्भ होता है और संन्यास आश्रम में उसका उद्यापन होता है।

यद्यपि ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य ये दोनों प्रवृत्ति संबंध के आश्रम हैं, तथापि ब्रह्मचर्य आश्रम में धर्ममूलक प्रवृत्ति के लिये शिक्षा लाभ होता है और गार्हस्थ्य में धर्ममूलक प्रवृत्ति की चरितार्थता होती है। तदनन्तर वानप्रस्थ और संन्यास ये दोनों निवृत्ति संबंध के आश्रम हैं। वानप्रस्थ में निवृत्ति व्रत का अभ्यास कराया जाता है, और संन्यास आश्रम में निवृत्ति की पूर्ण चरितार्थता होती है।

पूर्ण वैराग्य प्राप्त होने पर ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु जिनको तीव्र वैराग्य नहीं प्राप्त हुआ है उनके लिये साधारण रीति यह है कि प्रवृत्ति मार्ग से शनैः शनैः निवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त होते हुए, क्रमशः आश्रम से आश्रमान्तर ग्रहण द्वारा उच्च अधिकार प्राप्त करते हुए, चतुर्थाश्रम में संन्यास लेना ही वेद सम्मत है। यही आश्रम धर्म का परम लक्ष्य है।

ब्रह्मचर्याश्रम।

"धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोक द्वय रसायनम्।

अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्त निर्मलम्॥ (सु० भा०)

संसार में-धर्म का हितकारक, यश का विस्तार करने वाला, आयु को बढ़ाने वाला, इस लोक तथा परलोक को सुधारने वाला मुख्य ब्रह्मचर्य ही है, इस कारण इस निर्मल ब्रह्मचर्य का सेवन करने को हम भी अनुमोदन करते हैं।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य का आरम्भ किस समय होता है?

उ०—गर्भ से आठवें वर्ष में ब्राह्मण का यज्ञोपवीत करना चाहिये और एकादश वर्ष में क्षत्रिय का तथा द्वादश में वैश्य का उपनयन करना चाहिये। उपनयन संस्कार करके तदनन्तर ब्रह्मचारी को वेद पढ़ने के लिये गुरुकुल में भेज देना चाहिये। ब्रह्मचारी जब तक गुरुकुल में रहे। तब तक इन्द्रिय संयम करके तपोबल बढ़ाने के लिये नीचे कहे हुए नियमों का पालन करे।

ब्रह्मचारी को मधु, मांस, गन्ध, द्रव्य, माल्य व रस तैल आदि सेवन न करना चाहिये। तथा स्त्री सम्बन्धी अष्ट मैथुन* त्याग करने चाहिये यथा—दर्शन, स्पर्श, केलि, कीर्त्तन, गुप्तवार्ता, संकल्प, चेष्टा और क्रिया निवृत्ति ये मैथुन के आठ अङ्ग हैं। इनको मन, वचन और कर्म से त्याग कर इनसे विपरीत ब्रह्मचर्य धारण करके सदा गुरु की सेवा में तत्पर रहता हुआ वेदादि शास्त्रों को पढ़े इसी का नाम ब्रह्मचर्य है। यथा—

"कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्था सु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुन त्यागं ब्रह्मचर्यं तदुच्यते" ॥ (गु० भा०)

प्रश्न—ब्रह्मचारी कितने वर्ष तक गुरुकुल में रहे ?

उ०—ऋग्, यजु और साम इन तीनों वेदों को गुरुकुल में छत्तीस† वर्ष पढ़े, अर्थात् प्रत्येक वेद की शाखा को बारह वर्ष पढ़े, अथवा उसके आधे अठारह वर्ष तक पढ़े, तब प्रत्येक वेद की शाखा का छः वर्ष पढ़ना हुआ अथवा उसकी चौथाई नव वर्ष पर्यन्त पढ़े तो प्रत्येक वेद की शाखा के तीन वर्ष हुए अथवा कही हुई अवधि के भीतर

---

* दर्शनं स्पर्शनं केलिः कीर्तनं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निर्वृत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यं मनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः ॥
(क० रु० उ० श्रुति)

† षट्त्रिंशदाब्दिकंचर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिक मेव वा ॥ (मनु० ३, १)

वा बाहर जितने काल में वेदों को पढ़े उतने काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य धारण करके गुरुकुल में रहे। पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।

इति ब्रह्मचर्याश्रम।

गृहस्थाश्रम।

प्रश्न—गृहस्थाश्रम की क्या विधि है?

उ०—गुरु की आज्ञा से निज गृह्य की विधि पूर्वक स्नान समावर्त्तन करके समान जाति और शुभ लक्षणों युक्त कन्या से विवाह करे। विवाह के पश्चात् सन्तानोत्पत्ति के लिये ऋतुकाल* में ही अपनी स्त्री में गर्भाधान करना चाहिये। रजो दर्शन से चार दिनों सहित स्त्रियों के सोलह रात्रि दिन स्वाभाविक ऋतुकाल कहा है। उन सोलह रात्रि दिनों में पहिले के चार रात्रि दिन और एकादशी तथा त्रयोदशी ये छः रात्रियां निषिद्ध हैं। इसलिये इन रात्रियों को त्याग कर, शेष दश रात्रियों में, स्त्री गमन करना चाहिये। इन दश रात्रियों में भी यदि पर्व रात्रि हो तो उनमें भी स्त्री समागम न करना चाहिये। अमावास्या† पूर्णिमा, चतुर्दशी और अष्टमी ये पर्व रात्रियां

---

* ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया॥ (मनु० ३, ४५)

† अमावास्यां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां च सर्वशः।
अष्टम्यां सर्व पर्वाणां ब्रह्मचारी सदा भवेत्॥ (म०, भा०)

कही जाती हैं। इन पर्व रात्रियों में मनुष्य को सदा ब्रह्म-चारी रहना चाहिये इस प्रकार शास्त्रोक्त रीति से स्त्री के साथ संभोग करना चाहिये।

जब गर्भाधान का निश्चय हो जाय तब एक वर्ष तक स्त्री पुरुष को ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये। कारण कि बालक गर्भ में हो उस समय स्त्री से भोग करना महा पाप है और बालक हो जाने पर भी जब तक बालक दूध पीता रहे और अन्न खाना न सीखे तब तक स्त्री के साथ भोग करना उचित नहीं क्योंकि उस समय मैथुन करने से स्त्री का दुग्ध फट जाता है, दुग्ध फट जाने से बालक के शरीर की सारी धातुएँ बिगड़ जाती हैं, धातु बिगड़ जाने से बालक कमजोर, रोगी और अल्पायु हो जाता है।

अतः अपनी संतान को बलवान्, निरोगी और दीर्घायु बनाने के लिये, गर्भाधान रह जाने पर एक वर्ष तक स्त्री पुरुष को ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये। पश्चात् पूर्वोक्त रीति के अनुसार ऋतुकाल में ही मैथुन करना योग्य है। यह पहिले ही कहा गया है कि मनुष्यों की प्रवृत्ति स्वाभाविक विषयों की ओर है। इसीलिये ब्रह्मचर्य आश्रम में धर्ममूलक प्रवृत्ति की शिक्षा होती है और गृहस्थाश्रम में धर्म मूलक प्रवृत्ति की चरितार्थता होनी चाहिये। गृहस्थाश्रम प्रवृत्ति में मुग्ध होकर बन्धन व अधोगति प्राप्त करने के लिये नहीं है किंतु ब्रह्मचर्याश्रम से ही जिनका एकाएक संन्यासाश्रम में अधिकार नहीं है, उनको प्रवृत्ति मार्ग के भीतर से धीरे धीरे उन्नत करते हुए अंत में निवृत्ति मूलक कैवल्य आश्रम के अधिकारी बनने के लिए ही गृहस्थाश्रम का विधान किया गया है।

इसलिये गृहस्थाश्रममें प्रत्येक कार्य की विधि शास्त्र ने बतलाई है उसी के अनुसार चलने ही से गृहस्थों का कल्याण है शास्त्र में लिखा है कि:—

"स्वकर्म धर्मार्जिता जीवितानां ,
स्वेष्वेव दारेषु सदा रतानाम् ।
जितेन्द्रियाणामतिथि प्रियाणां ,
गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम्" ॥

अर्थात् जो गृहस्थ धर्म पूर्वक कर्मों से ही जीविका उपार्जन करते हैं, अपनी ही स्त्री से प्रेम करते हैं, अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं और अपने घर आए हुए अतिथियों का सत्कार किया करते हैं, ऐसे उत्तम पुरुषों को घर में ही मोक्ष है । अर्थात् वही सच्चे गृहस्थ हैं ।

"अहिंसा सत्य वचनं सर्व भूतानुकम्पनम् ।
शमो दानं यथा शक्ति गार्हस्थो धर्म उच्यते ॥" (बु० नीति)

किसी को पीड़ा न देना सच बोलना सब जीवों पर दया रखना मन को दमन करना और अपने सामर्थ्य भर दान देना यही गृहस्थों का धर्म है ।

इति गृहस्थाश्रम ॥

वानप्रस्थाश्रम।

प्र०— गृहस्थाश्रम में कब तक रहना चाहिये अर्थात् वानप्रस्थ किस समय लेना चाहिये ?

उ०— गृहस्थ* जब अपनी देह की त्वचा को शिथिल देखे और बालों को सफेद देखे, तथा पुत्र के पुत्र उत्पन्न हुआ देखे, तब विषयों में वैराग्य युक्त होकर वानप्रस्थाश्रम के लिये वन का आश्रय लेना चाहिये। ग्राम्य जो धन धान आदि हैं तिनको और गौ घोड़ा शय्या आदि उपकरणों को छोड़ स्त्री को पुत्र के पास रख कर अथवा स्त्री के साथ ही वन को जाय। वन में शाक मूल फलों से अथवा भिक्षा से अपना निर्वाह करे और शास्त्रोक्त पंच महायज्ञ भी करता रहे। मृग चर्मादि धारण करे, दाढ़ी मूंछ आदि न मुंडावे, सायं प्रातःकाल स्नान करके त्रिकाल संध्योपासना करे इत्यादि मनुस्मृति में कहे हुए नियमों का पालन करता हुआ निवृत्ति व्रत का अभ्यास करे।

इति वानप्रस्थाश्रम।

---

* गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्॥ (मनु ६, २)

संन्यासाश्रम।

प्र०—संन्यास कितने प्रकार का होता है?

उ०—संन्यास दो प्रकार का होता है यथा—कर्म संन्यास और ज्ञान संन्यास।

कर्म संन्यास।

प्र०—कर्म संन्यास किस समय किया जाता है?

उ०—श्रुति* में लिखा है कि ब्रह्मचर्य समाप्त करके गृहस्थाश्रमी होकर वानप्रस्थाश्रम को पूर्ण करके वैराग्य के अभाव में भी आश्रमों के क्रमानुसार जो संन्यासी होता है, वह कर्म संन्यासी है। कर्म संन्यास भी दो प्रकार का होता है एक निमित्त संन्यास और दूसरा अनिमित्त संन्यास है। आतुर संन्यास को निमित्त संन्यास कहते हैं। और क्रम संन्यास को अनिमित्त संन्यास कहते हैं। प्राण के उत्क्रमण काल में अर्थात् मरण समय सब कर्मों का लोप जो आतुर संन्यास है, वह निमित्त संन्यास है। और जीवित दशा में दृढाङ्ग होते हुए भी सब देहादि पदार्थों को नश्वर समझ के त्याग करे अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त सब नाशवान् है ऐसा निश्चय करके क्रम से जो संन्यास धारण करता है वह अनिमित्त संन्यास है।

---

* ब्रह्मचर्य्यं समाप्य गृही भूत्वा वानप्रस्थाश्रममेत्य वैराग्यऽभावेप्याश्रम क्रमानुसारेण यः संन्यस्यति स कर्म संन्यासी। इत्यादि श्रुतिः। (ना० उ० ५)

इसी प्रकार स्मृति में कहा है कि आयु* का तृतीय भाग वानप्रस्थाश्रम में बिता कर चतुर्थ भाग में निःसंग होकर संन्यास ग्रहण करे। एक आश्रम से आश्रमान्तर ग्रहण करते हुए अग्निहोत्रादि (होम) समाप्त करके जितेन्द्रियता के साथ जब भिक्षा बलि आदि कर्मों से श्रान्त हो, तब संन्यास ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार संन्यास ग्रहण करने से परलोक में मोक्ष के लाभ से ब्रह्मभूत ऋद्धि को प्राप्त होता है। यह संन्यास का साधारण क्रम है।

ज्ञान संन्यास।

प्र०—ज्ञान संन्यास किस समय लेना चाहिए?

उ०—असाधारण दशा में ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास ग्रहण कर सकते हैं, जैसा पहले ही कहा गया है। श्रुति† में लिखा है कि—ब्रह्मचर्य से वा गृह से अथवा वन से संन्यास लेवे। जिस दिन वैराग्य हो, उसी दिन संन्यास लेवे। परन्तु मंद वैराग्य में संन्यास का अधिकार नहीं। तीव्र वैराग्य होने

* वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत॥
आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः।
भिक्षा बलि परिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते॥
(मनु० ६, ३३, ३४)

† ब्रह्मचर्य्या देव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वाथ।
यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्॥ इत्यादि श्रुति।
(ना० उ० उपदेश ३)

पर संन्यास लेना चाहिये; क्योंकि संन्यास की तीव्र वैराग्य ही परमावधि है।

विना तीव्र वैराग्य के ज्ञान संन्यास लेना वेद शास्त्र ने निषेध किया है।

श्रुति* कहती है कि—"द्रव्य अन्न वस्त्र तथा प्रतिष्ठादि के लिये, जो साधु संन्यासी का वेष धारण करता है वह उभय भ्रष्ट होता है, उसकी मुक्ति कदापि न होगी।" इसी प्रकार स्मृति† में भगवान् ने कहा है कि जिसकी बुद्धि विषयासक्त है, जिसने इन्द्रियों को तथा काम क्रोधादि को नहीं जीता है, और जिसको ज्ञान वैराग्य नहीं प्राप्त हुआ है, ऐसा होकर जो पाखण्डीपने से त्रिदण्ड आदि संन्यास को धारण करता है, वह धर्म को डुबाने वाला पाखण्डी-पूजनीय देवताओं को, जीवात्मा को और मुक्त परमात्मा को धोखा देता है, ऐसा करने के कारण वह इस लोक तथा परलोक से भ्रष्ट होता है।

अतः ज्ञान वैराग्य से रहित संन्यास कभी न लेना चाहिये।

प्रश्न—वैराग्य कितने प्रकार का होता है?

---

* द्रव्यार्थमन्नवस्त्रार्थं यः प्रतिष्ठार्थमेववा।
संन्यदुभय भ्रष्टः स मुक्तिं नाप्तुमर्हति ॥ (मै० उ० २, २०)

† यस्त्व संयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रिय सारथिः।
ज्ञान वैराग्य रहित स्त्रिदण्डमुपजीवति ॥
सुरानात्मानमात्मस्थं निन्हुते मां च धर्म हा।
अविपक्व कषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ॥
(भा० ११।१८।४०।४१)

उ०—पर और अपर इस भेद से वैराग्य दो प्रकार का होता है, तिनमें पुनः अपर वैराग्य-यतमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय और वशीकार इस भेद से चार प्रकार का है। तिनमें पुनः वशीकार मंद तीव्र और तीव्रतर भेद से तीन प्रकार का होता है इस रीति से वैराग्य के आठ भेद हैं।

यतमान-वैराग्य ।

प्रश्न—यतमान वैराग्य का क्या लक्षण है

उ०—इस संसार में सार वस्तु क्या है और असार वस्तु क्या है, यह बात सद्गुरु और सत् शास्त्र से निश्चय करनी चाहिये, इस प्रकार के यत्न का नाम यतमान वैराग्य है।

व्यतिरेक-वैराग्य ।

प्रश्न—व्यतिरेक वैराग्य का क्या लक्षण है ?

उ०—मेरे चित्त में पहिले जो काम क्रोधादि दोष थे उनमें से कितने निवृत्त हुए हैं और कितने शेष (बाकी) रहे हैं, इस प्रकार विचार करके शेष रहे कामादिकों में दोष दृष्टि कर के निवृत्त करने का नाम व्यतिरेक वैराग्य है।

एकेन्द्रिय-वैराग्य ।

प्रश्न—एकेन्द्रिय वैराग्य का क्या लक्षण है ?

उ०—हृदय में विषयों की इच्छा होते हुए भी मन करके इन्द्रियों का रोकना एकेन्द्रियत्व वैराग्य का लक्षण है।

वशीकार-वैराग्य।

प्रश्न—वशीकार वैराग्य का क्या लक्षण है ?

उ०—इस लोक तथा परलोक के विषयों की इच्छा त्याग करने का नाम वशीकार वैराग्य है। सो वशीकार भी तीन प्रकार का है, यथा—मंद, तीव्र और तीव्रतर।

मंद-वैराग्य।

प्रश्न—मंद वैराग्य का क्या लक्षण है ?

उ०—धन, स्त्री पुत्रादिकों के नष्ट होने से अथवा धन पुत्रादिकों की प्राप्ति न होने से धिक् संसार है अर्थात् इस संसार में मुझको कुछ भी सुख नहीं है। इस बुद्धि करके विषयों का त्याग, मंद वैराग्य है।

तीव्र-वैराग्य।

प्रश्न—तीव्र वैराग्य का क्या लक्षण है ?

उ०—इस जन्म में मुझ को स्त्री पुत्रादि मत प्राप्त हो, इस स्थिर बुद्धि करके विषयों का त्याग तीव्र वैराग्य है। अथवा धन स्त्री पुत्रादि के होते हुए भी विषयों में दोष दृष्टि करके उनका त्याग करना तीव्र वैराग्य है।

तीव्रतर-वैराग्य ।

प्रश्न—तीव्रतर वैराग्य का क्या लक्षण है ?

उ०—मुझको ब्रह्मलोकादि पर्यंत किसी भी लोक की इच्छा नहीं, ऐसी स्थिर बुद्धि करके सर्व विषयों का त्याग तीव्रतर वैराग्य का लक्षण है। पूर्व कहा गया कि मंद वैराग्य में संन्यास का अधिकार नहीं, किन्तु तीव्र वैराग्य होने पर चलने फिरने की शक्ति न हो, तो कुटीचक संन्यास का अधिकार है। यदि चलने फिरने की शक्ति हो तो बहूदक संन्यास का अधिकार है। और तीव्रतर वैराग्य होने से हंस तथा परम हंस संन्यास का अधिकार है। परमहंस संन्यास दो प्रकार का है, एक विविदिषा और दूसरा विद्वत् संन्यास है। चतुष्टय साधन सम्पन्न होकर तत्त्वज्ञान के लिये करने योग्य संन्यास विविदिषा संन्यास है तथा गृहस्थाश्रमादिकों में श्रवणादि करके (ज्ञान के द्वारा) ब्रह्मका साक्षात्कार तो कर लिया है जिसने, परंतु चित्त की विश्रांति अर्थात् जीवनमुक्ति के विलक्षण आनंद की प्राप्ति के लिये करने योग्य संन्यास वह विद्वत् संन्यास है। इसी को पर वैराग्य तथा ज्ञान संन्यास कहते हैं।

ज्ञानी के लक्षण ।

प्रश्न—ज्ञान संन्यासी के कितने लक्षण होते हैं ?

उ०—ज्ञान संन्यासी के मुख्य दश लक्षण शास्त्र* में कथन किये गए हैं यथा—क्रोध रहित होना, सांसारिक सुखों से

---

* अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रियत्वं क्षमा दया शान्ति जन प्रियत्वम् ।
निर्लोभदाता भय शोक हीनः ज्ञानस्य चिन्हं दश लक्षणानि ॥ (सु० नी०)

उदासीन रहना, इन्द्रियों को वश में रखना, क्षमा, दया, शान्ति लोक-प्रिय होना, प्रत्युपकार की इच्छा के विना शिक्षादि दान देना, निर्भय और शोक रहित, ये दश लक्षण वा चिह्न ज्ञान संन्यासी के हैं। (*"ज्ञानं संन्यास लक्षणमिति श्रुतिः"*) ऐसे ज्ञानी महात्मा के दर्शन से सब संसार पवित्र होता है। यथाः—

तद्दर्शनेन सकलं जगत्पवित्रं भवति।
तत्सेवापरोऽज्ञोपि मुक्तो भवति॥
तत्कुलमेकोत्तर शतं तारयति।
तन्मातृ पितृ जाया पत्यवर्ग च मुक्तं भवत्युपनिषद्॥

(मण्डल ब्राह्मण उ०)

इति श्री स्वामी अचलराम विरचित हिन्दू धर्म रहस्यान्तर्गत आश्रम धर्म समाप्त।

नारी धर्म।

जैसे चार वर्ण और चार आश्रम विशेष धर्म की शाखा हैं, वैसे सती धर्म भी एक विशेष धर्म की शाखा है।

आर्य्य शास्त्रों में पुरुष के लिये अनेक प्रकार के धर्माङ्गों का अनुष्ठान बताया है, और स्त्री के लिये एक पतिव्रत धर्म का ही अनुष्ठान विधान किया है।

इसका कारण यह है कि-"पुरुष का धर्म, यज्ञ प्रधान* और स्त्री का धर्म तप प्रधान है।" तात्पर्य्य—पुरुष का धर्म, यज्ञ प्रधान होने से पुरुष को शास्त्रोक्त सब कर्म करने चाहिये क्योंकि यज्ञ अनेक प्रकार के हैं अर्थात् कर्म यज्ञ, उपासना यज्ञ, और ज्ञान यज्ञ। इन सब का अनुष्ठान पुरुष को करना चाहिये और स्त्री को केवल सतीत्व धर्म का ही विशेष रूप से पालन करना चाहिये क्योंकि तपो धर्म एक ही प्रकार का होता है अर्थात् तन, मन, वचन से पवित्र रह कर शुद्ध भाव से अपने पति की सेवा करना ही स्त्री का परम धर्म शास्त्रकारों ने बताया है।

इस पातिव्रत्य धर्म के द्वारा ही स्त्री स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त होती है।

पातिव्रत्य तप की महिमा।

वेदादि शास्त्रों ने पतिव्रता के तपोबल की अपूर्व महिमा वर्णन की है।

पातिव्रत्य तपोबल से, सिद्ध, साधक, योगी, यति, तपस्वी, सूर्य, चन्द्र और अग्नि देवता आदि सब घबराते हैं अर्थात् सिर झुकाते हैं† शास्त्र में लिखा है कि:—"एक अग्निहोत्री ब्राह्मण की स्त्री का पति कार्य्य श्रमित (थका) हुआ आकर अपनी स्त्री के जंघा पर मस्तक रख कर निद्रावश होगया, उस समय स्त्री के

---

* यज्ञ परः पुरुष धर्मः॥ तपः प्रधान नार्य्याः॥ (कर्म मी०)

† सुतं पततं प्रसमीक्ष्य पावके॥ न बोधयमास पतिं पतिव्रता॥
पतिव्रता शाप भयेन पीडितः। हुताशनश्चंदन पंक शीतलः॥
(प० ध० प०)

गोद में उसका छोटा बालक भी था और पास ही में एक अग्नि कुण्ड था ब्राह्मण का बालक अपनी माता की गोद से उतर कर उस अग्निकुण्ड में गिर गया । परंतु पतिव्रता स्त्री अपने पति के निद्रा से उत्थान होने के भय से ज्यों की त्यों बैठी रही । उस पतिव्रता के शाप के भय से अग्निदेव ने चंदन के समान शीतल होकर उस बालक की रक्षा की ।

इसी प्रकार (मा० पु० अ० १६) में लिखा है कि एक पति-व्रता स्त्री का पति पङ्गु (पांगला) और कुष्ट (कोढ़) रोगी था वह स्त्री अपने पति को टोकरे में बैठाय के अंधेरी रात्रि के समय कहीं जाती थी । रास्ते में मार्कण्डेय ऋषि को उस स्त्री की ठोकर लग गई । ऋषि ने शाप दिया कि सूर्य उदय होते ही तेरा पति मर जाय । सती ने कहा—महाराज ! मैं सूर्य्य को उदय ही न होने दूंगी । उस पतिव्रता ने सूर्य को अर्घ्य देकर प्रार्थना की कि हे सूर्य देव आप उदय न होवें । यदि आप उदय होवेंगे तो मैं शाप देकर भस्म कर दूंगी उस सती के शाप भय से सूर्य उदय नहीं हुआ । जब सूर्य्य का प्रकाश न होने से प्रजा का सब कार्य बन्द हो गया तब सब देवता और ऋषि मुनियों ने सूर्य से प्रकाशित होने की प्रार्थना की । सूर्य ने कहा कि मैं पतिव्रता के शाप के भय से उदय नहीं हो सकता । तब सब ऋषि मुनि और देवताओं ने सती से प्रार्थना की कि तेरा पति न मरेगा, सूर्य उदय होने की आज्ञा दे ।

जब सती ने सूर्य उदय होने की आज्ञा दी फिर सूर्य उदय हुआ । सारांश यह है कि "पतिव्रता के तेज से ही सूर्य अग्नि आदि ज्योतिष्मान् पदार्थों की ज्योतियां संसार को प्रकाशित करती हैं ।"

इस प्रकार पतिव्रता के तपोबल की अपूर्व महिमा हिन्दू *शास्त्रों में वर्णित की गई है । "प्यारी बहिनो ! एक समय वह था जो भारतवर्ष में ऐसी पतिव्रता स्त्रियां होती थीं उन सती माताओं के तप से हमारा देश सब देशों का शिरोमणि और शिक्षक था ।"

उन माताओं के उदर से अद्वितीय सन्तान उत्पन्न होते थे अर्थात् यहां जैसे अद्वितीय धर्मात्मा, शूरवीर, योगी, यति, तपस्वी, ऋषि मुनि विद्वान् आदि अन्य देशों में ढूँढने से नहीं मिलते थे । देश के उन्नतशाली होने के जो लक्षण कहे जाते थे वे सब यहीं पर थे ।

इस समय वे लक्षण दिखाई नहीं देते इसका कारण यही है कि आज कल स्त्रियों में वह पतिव्रत तपोबल नहीं रहा ।

प्यारी बहनो ! देश की उन्नत अवस्था केवल पुरुषों के सदाचारी होने पर ही निर्भर नहीं किन्तु स्त्रियों के सच्चरित्र की भी अपेक्षा रखती है ।

मनुस्मृति में लिखा है कि—"सृष्टि की रचना समय परमेश्वर ने अपने देह के दो खण्ड कर के आधे भाग से पुरुष बन कर और आधे से स्त्री बन कर विराट् नाम पुरुष को उत्पन्न किया ।

इसी प्रकार †श्रुति में लिखा है कि सृष्टि के पूर्व एक आत्मा ही था इसलिये वह एकाएकी रमण नहीं कर सका तब उसने

---

* तपनस्तप्यतेऽत्यन्तं दहनोऽपि च दह्यते ।
कल्पन्ते सर्व्वतेजांसि दृष्ट्वा पातिव्रतं महः ॥ (स्कंद पु०)

† तस्मादेकाकी न रमते द्वितीय मिच्छति स एवात्मा
द्विधा भवति पतिः पत्नी चेति ॥ इति श्रुतिः ।

द्वितीय की इच्छा की फिर वही आत्मा पति और पत्नी इस द्विधा-रूप से विभक्त हुआ ।

इन श्रुति और स्मृति वचनों का तात्पर्य है कि—संसार की उन्नति के लिये स्त्री पुरुष दोनों की आवश्यकता है । बिना स्त्री के केवल पुरुष संसार की उन्नति नहीं कर सकता और बिना पुरुष के केवल स्त्री स्वतंत्र कुछ नहीं कर सकती । अर्थात् प्रकृति की सत्ता पुरुष से स्वतंत्र किसी काल में नहीं रह सकती । इसी कारण आर्य *शास्त्रकारों ने आज्ञा दी है कि—बाल्यावस्था में स्त्री पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और वृद्धा-वस्था में पुत्रादि के अधीन रहनी चाहिये । स्त्री का किसी अवस्था में स्वतंत्र रहना योग्य नहीं है, यही स्त्री का सनातन धर्म है ।

कन्या का कर्त्तव्य ।

प्रश्न—कन्यावस्था में स्त्री का क्या कर्त्तव्य है ?

उ०—बाल्यावस्था में स्त्री का कर्त्तव्य है कि वह माता पिता और भ्राता आदि की आज्ञा में चले और माता पिताओं का भी कर्त्तव्य है कि कन्या को पतिव्रता धर्म की शिक्षा देवें अर्थात् सीता, सावित्री, अनुसूया, दमयन्ती आदि पति-व्रता स्त्रियों की कथा वार्ताओं को पढ़ावें और याद करावें तथा गृह कार्य का शुद्ध आचार विचार सिखावें इत्यादि ।

---

* पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्राश्चस्थविरेभावे न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति ॥
एवमेव विधि नोक्ताः स्त्रीणां धर्म्मा सनातनाः ।
(व० स्मृ० ५, ४)

प्रश्न—कन्या का विवाह किस समय करना चाहिये ?

उ०—बारह वर्ष की उम्र में कन्या का विवाह कर देना चाहिये, बारह वर्ष से कम उम्र की कन्या का विवाह करना योग्य नहीं।

गृहिणी स्त्री का कर्त्तव्य।

प्रश्न—गृहिणी अवस्था में स्त्री का क्या कर्त्तव्य है ?

उ०—कन्यावस्था में पातिव्रत्य की शिक्षा प्राप्त करके गृहिणी अवस्था में उस पातिव्रत्य धर्म को चरितार्थ करना ही स्त्री का परम कर्त्तव्य है। पति चाहे दुष्ट स्वभाव वाला हो वा विद्यादि गुण हीन हो अथवा व्यभिचारी होने पर भी पति को देवता समान जान कर उस की सेवा करना ही स्त्री का कर्त्तव्य है। पतिव्रता स्त्रियों के लिये पति की सेवा से पृथक् यज्ञ व्रत, उपवास आदि कोई कर्त्तव्य नहीं है केवल पति सेवा द्वारा ही उनको उन्नत लोक प्राप्त होता है। इस प्रकार मन्वादि* शास्त्रों में लिखा है। उसी प्रकार रामायण में कहा है कि:—

---

* विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वापरिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः॥
नास्ति स्त्रीणां पृथक्‌यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥

(मनु ५, १५४, १५५)

वृद्ध रोग वश जड़ धन हीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना । नारि पाय यमपुर दुख नाना ॥
एकै धर्म एक व्रत नेमा । काय वचन मन पति पद प्रेमा ॥
जग पतिव्रता चार विधि अहहीं । वेद पुराण सन्त अस कहहीं ॥
उत्तम के अस वश मन माहीं । सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम पर पति देखे कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
धर्म विचारि समुझि कुल रहहीं । सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं ॥
विन अवसर भय ते रह जोई । जानहु अधम नारि जग सोई ॥
पति वञ्चक पर पति रति करई । रौरव नरक कल्प शत परई ॥
विन श्रम नारि परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छांड़ि छल गहई ॥
पति प्रतिकूल जन्म जहँ जाई । विधवा होय पाय तरुणाई ॥

इत्यादि गृहिणी स्त्रियों का कर्त्तव्य आर्य्य शास्त्रों ने बताया है ।

विधवा स्त्री का कर्त्तव्य ।

प्रश्न—विधवावस्था में स्त्री का क्या कर्त्तव्य है ?

उ०—कन्या, गृहिणी वा विधवा सकल अवस्था में नारी के लिए एक पातिव्रत्य धर्म का ही विधान है, इस धर्म के बिना स्त्री का जीवन ही वृथा है। कन्या और गृहिणी यह दो अवस्था तो स्त्री के लिए सुख प्रद हैं परन्तु विधवावस्था बड़ी दुःख प्रद है अर्थात् महान् दुःखप्रद है। विधवावस्था-में पातिव्रत्य धर्म को पालन करके उस का उद्यापन करना किसी विरली स्त्री ही का काम है।

विधवाओं की संख्या।

भारतवर्ष की कुछ जातियों में विधवा विवाह की रीति है परन्तु अधिकांश जातियों में विधवा विवाह को नाजायज मानते हैं। अर्थात् भारत में विधवा विवाह सर्वत्र प्रचलित नहीं है ऐसी दशा में विधवाओं की संख्या अधिक होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

१ वर्ष से ३० वर्ष तक की आयु की विधवाओं की संख्या का चित्र

वर्ष	संख्या
१ वर्ष की	५९७
१ से २ " "	४९४
२ से ३ " "	१२५७
३ से ४ " "	२४३८
४ से ५ " "	६७०७
५ से १० " "	८५०३७
१० से १५ " "	२३२१४७
१५ से २० " "	३९६१७२
२० से २५ " "	७४२८२०
२५ से ३० " "	११६३७२०
योग	२६३१३८९

उपर्युक्त विधवाओं में बहुतेरी बेचारी तो इतनी कम उम्र की हैं कि—यदि वे योरोप या अमेरिका में उत्पन्न होतीं तो अभी उनका विवाह ही नहीं होता।

बहुतों की अवस्था तो इतनी कम है कि वे यह भी नहीं जानतीं कि "विवाह" किस चिड़िया का नाम है।

विधवाओं का दुखमय जीवन।

अधिकांश विधवाओं को कैसा कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

आप जानते हैं कि—जो लोग पांच वर्ष से भी कम आयु में अपनी बच्चियों को व्याह देते हैं उनको आजन्म वैधव्य दुःख भोगना पड़ता है। अभी जब काशी में सनातनधर्म महासभा में माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय के प्रयत्न से यह प्रस्ताव पास किया कि बारह वर्ष से कम आयु की कन्या का विवाह शास्त्र से निषिद्ध है, ऐसे प्रस्ताव को देख कर बहुत से समाज सुधारक हंसते थे। वे कहते थे कि यह सुधार तो व्यर्थ और निरर्थक है। यदि वे इन विधवाओं की संख्या देखेंगे तो उन्हें ज्ञात हो जायगा कि भारत की जैसी अवस्था है उसे देखते हुए इस प्रकार का सुधार भी निरर्थक नहीं कहा जा सकता। हिन्दू जाति में ७५ वर्ष की अवस्था वाले बूढ़े पुरुष भी बहुधा वर बनने में लज्जित नहीं होते अर्थात् बुढ़ापे में भी विवाह करते जाते हैं।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि ६० वर्ष की अवस्था वाला पुरुष १५ वर्ष की कन्या से विवाह करके अथवा बिना विवाह

ही किसी स्त्री से व्यभिचार कर के विषय सुख को भोगता है। उसी पुरुष की पन्द्रह बीस वर्ष की विधवा कन्या उसी घर के किसी एकान्त कमरे में हिन्दू जाति के आचार्यों को अपने अश्रु प्रवाह से तर्पण करती रहती है। इससे बढ़ कर और अज्ञान क्या हो सकता है।

सती प्रथा उठने से पहिले ये अभागिनी मृतक पति की चिताओं पर या तो स्वयं जल जाती थीं या जला दी जाती थीं।

अच्छा हुआ कि सती प्रथा मिटा दी गई परन्तु आज कल कहीं कहीं पर विधवाओं की इतनी दुर्दशा है कि उससे तो उनका मरना ही सर्वोत्तम है।

हमारे चतुर शास्त्रकारों ने विधवाओं के लिये कठिन नियम इसलिये बनाये थे कि उनमें कामोद्दीपन कम हो। किसी समय ये नियम कल्याणप्रद थे परन्तु आज वे कल्याणप्रद नहीं कहे जा सकते, कारण कि प्राचीनकाल में भारतवर्ष में राजा तथा प्रजा सब लोग सच्चे सनातनधर्मावलम्बी थे और ऋषियों की आज्ञाओं का पालन करते थे। स्त्री पुरुष कोई भी व्यभिचारी नहीं होते थे। इस विषय में सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद् (५।११) में राजा अश्वपति ने ऋषियों से कहा कि मेरे देश में चोर, मद्यप, और व्यभिचारी कोई भी पुरुष नहीं है तब व्यभिचारिणी कैसे हो सकती है। ("*नस्वैरी स्वैरिणी कुतः*")

आज जहाँ देखिये वहां विधर्मी गुण्डे हमारी विधवाओं के घरों के पास चक्कर लगाया करते हैं, वैसे ही कई व्यभिचारिणी बदमाश औरतें भी विधवाओं को फँसाने के लिये अपना जाल बिछाये रहती हैं। थोड़ी सी ग़फ़लत रही कि, ये विधवाओं को

ले उड़ती हैं । ये लोग हमारी विधवाओं को धर्मच्युत करके, उन्हें गो मांस खिला कर उनसे व्यभिचार करते हैं । इस समय कितनी ही हिन्दू जाति की विधवायें विधर्मियों के घरों में घुस कर सन्तान उत्पन्न करके उनकी वृद्धि और हमारा सर्वनाश कर रही हैं ।

यदि हिन्दुओं में आत्माभिमान और लज्जा होती तो अब तक विधवाओं के लिये या तो कोई उपाय किये होते या कर्म-नाशा नदी में जाकर डूब मरते ।

प्रायः लोग कहते हैं कि आज कल हम अपनी विधवाओं के लिय खाने पहरने की जितनी अधिक सुविधा कर दें, उतना ही अच्छा है और इससे भी अच्छा यह है कि विधर्मियों की नजरों से जितना अधिक उनको बचावें उतना और भी अच्छा है । परन्तु इतने ही से विधवाओं का उद्धार नहीं हो सकता । आप जानते हैं कि कामेन्द्रिय जिसका प्रवल वेग बड़ा ही अदमनीय है ।

शास्त्र में लिखा है कि *विश्वामित्र और पराशर से लेकर जोकि मुनि पत्तों को भक्षण करते थे, वे भी सुन्दर स्त्री के मुख को देखते ही कामातुर हो गये, जब कि—दूध दधि घृत करके संयुक्त भोजन को जो स्त्री पुरुष खाते हैं, उनकी कामेन्द्रिय यदि अपने वशीभूत हो जाय तब तो विन्ध्याचल पर्वत भी समुद्र में तरने लग जायगा ।

---

* विश्वामित्र पराशर प्रभृतयो वाताम्बुपर्णा शना
स्तेऽपिस्त्री मुख पंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः ॥
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुंजते मानवा
स्तेषामिन्द्रिय निग्रहो यदि भवेद्विंध्यस्तरेत्सागरम् ॥
(भर्तृहरि श०)

तात्पर्य यह है कि जैसे विन्ध्याचल पर्वत का समुद्र में तरना असम्भव है तैसे कामेन्द्रिय का रोकना भी असम्भव है। जब कि ऐसे फलाहारी महान् तपस्वी तत्ववेत्ता मुनि लोग भी इस काम देव को न रोक सके तब पुरुष से अष्ट गुण अधिक काम युक्त स्त्रियां कैसे रोक सकती हैं। इन अभागिनी अबलाओं से हम अटल और आजन्म ब्रह्मचर्य्य की आशा करते हैं। यही हमारी मूर्खता सब अनर्थों का मूल है, यही हिन्दू जाति के अपमान और सत्यानाश का कारण है।

विधवाओं का उद्धार।

प्रश्न—विधवाओं के सुधार के लिये क्या उपाय करने चाहिये ?

उ०—मेरी समझ में विधवा सुधार के लिये तीन उपाय हैं, प्रथम उपाय तो यह है कि बाल-विवाह सर्वथा रोक दिया जाय बाल विवाह के बंद होने से विधवाओं की संख्या बहुत कम हो जायगी। परन्तु बाल विवाह बंद होने पर भी बहुत सी विधवायें रह जायँगी। उनके लिये दूसरा उपाय यह है कि जो माताएँ आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करने में समर्थ हों उनसे देश हित का काम लेना चाहिये अर्थात् वे अध्यापिका दाई तथा उपदेशिका बन कर देश का बहुत कुछ उपकार कर सकती हैं, इनके वास्ते प्रत्येक शहर में विधवाश्रम खुलने चाहियें।

तीसरा उपाय—जो विधवायें आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करने में असमर्थ हों, उनके लिये विधवा विवाह की खुली आज्ञा होनी चाहिये। ताकि वे व्यभिचार गर्भपात भ्रूण हत्यादि महा पापों से

बच कर अपनी जाति और धर्म में कायम रहें। यही विधवाओं के कल्याण का मार्ग है।

इति श्री स्वामी अचलराम विरचित हिन्दू धर्म रहस्यान्तर्गत नारी धर्म समाप्त।

असाधारण धर्म-पाद।

प्रश्न—असाधारण धर्म किसे कहते हैं?

उ०—जिस धर्म के द्वारा एक ही जीवन में उत्तम वर्ण को प्राप्त होना असाधारण धर्म है।

प्रश्न—एक ही जीवन में उत्तम वर्ण को कैसे प्राप्त हो सकता है?

उ०—योग तपोबल के द्वारा होता है।

प्रश्न—तपोबल से उत्तम वर्ण होने के विषय में उदाहरण और प्रमाण क्या है?

उ०—आर्य शास्त्रों में लिखा है कि, ऋषभदेव के ८१ पुत्र और विश्वामित्र आदि तप करके क्षत्रिय से ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए हैं।

महर्षि विश्वामित्र के एक ही जीवन में सब धर्माङ्गों के उदाहरण घट सकते हैं यथा—विश्वामित्र का राज धर्म विशेष धर्म का उदाहरण है, आपत्काल में कूकर मांस खाकर शरीर रक्षा करना आपद्धर्म का उदाहरण है तथा यज्ञादि करना साधारण धर्म और

प्रबल तपस्या के द्वारा क्षत्रिय से ब्राह्मण होना असाधारण धर्म का अति स्पष्ट उदाहरण है।

"विश्वामित्रोवसिष्ठश्च मतङ्गो नारदादयः।
तपो विशेषैः संप्राप्ताउत्तम त्वं न जातितः" ॥
(म० शु० नी०)

आपद्धर्म-पाद।

प्रश्न—आपद्धर्म का क्या लक्षण है?

उ०—आपत् धर्म का लक्षण आर्य शास्त्रों में इस प्रकार लिखा है कि—"देश भङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि।
रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत्" ॥
(परा० स्मृ० ७, ४१)

देश में विद्रोह या दुर्भिक्ष आदि उत्पन्न होने से अथवा महामारी या किसी प्रकार की आपत् की उत्पत्ति होने से प्रथम शरीर की रक्षा करके पश्चात् धर्मानुष्ठान करना चाहिये।

प्र०—दुर्भिक्षादि आपत्काल में किन २ उपायों से अपना निर्वाह करना चाहिये?

उ०—आपत्काल में मृदु* या दारुण किसी भी उपाय से दीन आत्मा (शरीर) की रक्षा करनी चाहिये इसके बाद जब

* येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन च।
उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्म' माचरेत् ॥
आपत्काले तु सम्प्राप्ते शौचाचारं न चिन्तयेत्।
स्वयं समुद्धरेत् पश्चात् स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥
(प० स्मृ० ७, ४२, ४३)

सामर्थ्य हो तब धर्मानुष्ठान करना चाहिये। आपत्काल में शौचाचार के विषय में भी कुछ विचार न करना चाहिये। पहिले विपत्ति से अपने को बचाना चाहिये पश्चात् स्वस्थ होकर धर्मानुष्ठान करना योग्य है।

प्रश्न—आपत्काल में मृदु उपाय कौन से हैं?

उ०—ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत और सत्यानृत। ऋत—खेत या हाट में अन्न पड़ा रह गया हो, उससे जीविका करने को ऋत कहते हैं।

अमृत—जो बिना मांगे मिल जाय उसे अमृत कहते हैं।

मृत—भीख मांग कर लाये हुए अन्न को मृत कहते हैं।

प्रमृत—खेती करके कमाये हुए धन को प्रमृत कहते हैं।

सत्यानृत—व्यापार करके खाना सत्यानृत कहलाता है।

प्र०—दारुण उपाय कौन सा है?

उ०—यदि निर्दिष्ट मृदु उपायों से निर्वाह होता न देखे तो आपत्काल में उपस्ति और विश्वामित्र की तरह दारुण उपाय से भी प्राणों की रक्षा करने में कोई दोष नहीं।

प्रश्न—आपत्काल में उषस्ति और विश्वामित्र ने किस तरह से प्राण रक्षा की?

उ०—सामवेदीये छान्दोपनिषद् १-१० में लिखा है कि—"कुरु देश में दुर्भिक्ष पड़ने के कारण तश्चक्र का पुत्र उषस्ति नामक ऋषि अपनी अक्षता स्त्री के साथ दुःख करके ग्रसित हुआ। उस देश से—जीवन धारणार्थ निकल गया। रास्ते में एक ग्राम आया वहां पानी के

झरने के पास एक धनी (चाण्डाल) उड़द या भुने हुए चने खा रहा था। ऋषि ने प्राण रक्षा का और कोई उपाय न देख कर चाण्डाल से ही उसका उच्छिष्ट मांग कर खा लिया। चना खाने के बाद जब चाण्डाल ने उच्छिष्ट जल देना चाहा तब ऋषि ने कहा कि—"मैं तुम्हारा उच्छिष्ट जल नहीं पीता। चण्डाल ने कहा मेरा झूठा अन्न तो तूने खा लिया और जल पीने से क्या पतित होता है। ऋषि ने कहा मैं अनाहार से मर रहा था इस लिये प्राण रक्षार्थ उच्छिष्ट भी खा लिया परन्तु जल तो मेरे सामने ही झरने से आ रहा है इस लिये तेरा झूठा क्यों पीऊँ।"

इसी प्रकार-महाभारत शान्तिपर्व में लिखा है कि-"एक समय द्वादश वर्ष पर्यन्त घोर अनावृष्टि हुई। ऐसे भयानक दुर्भिक्ष के कारण महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त क्षुधातुर होकर घर छोड़ कर अन्न की खोज में इधर उधर भ्रमण करते हुए अरण्य में, प्राणि-घातक हिंस्र चण्डालों का एक ग्राम देख कर उसी में प्रविष्ट हुए परन्तु उस ग्राम में कुछ न प्राप्त हुआ तो हा कष्ट! ऐसा कह कर दुर्बलता के कारण किसी चाण्डाल के गृह में गिर पड़े और किसी उपाय से प्राणरक्षा सोचने लगे। थोड़ी देर में उस चाण्डाल के गृह में उसी रोज मारे हुए कुक्कुर का मांस देखने में आया। उसको देख कर विश्वामित्र ने सोचा कि मैं किसी न किसी तरह से इस मांस को अवश्य ही अपहरण करूं क्योंकि इसके सिवाय इस समय प्राण रक्षा का और कोई उपाय नहीं दीखता है, आपत्काल में चोरी करने पर भी महात्माओं के गौरव की हानि नहीं होती है और शास्त्र में भी कहा है कि "आपत्काल में प्राणरक्षार्थ

झरने के पास एक धनी (चाण्डाल) उड़द या भुने हुए चने खा रहा था। ऋषि ने प्राण रक्षा का और कोई उपाय न देख कर चाण्डाल से ही उसका उच्छिष्ट मांग कर खा लिया। चना खाने के बाद जब चाण्डाल ने उच्छिष्ट जल देना चाहा तब ऋषि ने कहा कि—"मैं तुम्हारा उच्छिष्ट जल नहीं पीता। चण्डाल ने कहा मेरा झूठा अन्न तो तूने खा लिया और जल पीने से क्या पतित होता है। ऋषि ने कहा मैं अनाहार से मर रहा था इस लिये प्राण रक्षार्थ उच्छिष्ट भी खा लिया परन्तु जल तो मेरे सामने ही झरने से आ रहा है इस लिये तेरा झूठा क्यों पीऊँ।"

इसी प्रकार-महाभारत शान्तिपर्व में लिखा है कि-"एक समय द्वादश वर्ष पर्यन्त घोर अनावृष्टि हुई। ऐसे भयानक दुर्भिक्ष के कारण महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त क्षुधातुर होकर घर छोड़ कर अन्न की खोज में इधर उधर भ्रमण करते हुए अरण्य में, प्राणि-घातक हिंस्र चण्डालों का एक ग्राम देख कर उसी में प्रविष्ट हुए परन्तु उस ग्राम में कुछ न प्राप्त हुआ तो हा कष्ट! ऐसा कह कर दुर्बलता के कारण किसी चाण्डाल के गृह में गिर पड़े और किसी उपाय से प्राणरक्षा सोचने लगे। थोड़ी देर में उस चाण्डाल के गृह में उसी रोज मारे हुए कुक्कुर का मांस देखने में आया। उसको देख कर विश्वामित्र ने सोचा कि मैं किसी न किसी तरह से इस मांस को अवश्य ही अपहरण करूं क्योंकि इसके सिवाय इस समय प्राण रक्षा का और कोई उपाय नहीं दीखता है, आपत्काल में चोरी करने पर भी महात्माओं के गौरव की हानि नहीं होती है और शास्त्र में भी कहा है कि "आपत्काल में प्राणरक्षार्थ

ब्राह्मण चोरी* भी कर सकता है। ऐसा विचार करके विश्वामित्र† ने "श्वान का मांस चुरा कर देव पितृ कार्य करके भोजन कर लिया।". इति॥

भक्ष्याभक्ष्य का विचार।

प्रश्न—मांस खाना उचित है वा अनुचित है?

उ०—यदि शाकादि अन्नाहार सर्वथा ही न मिले तो मांसाहार करके भी प्राणों की रक्षा करना चाहिये, और शाकादि मिलते हुये मांसाहार कभी न करना चाहिये, क्योंकि—"मद्य और मांस ये‡ राक्षस भूत पिशाचादिकों के भक्षण हैं, देवता और मनुष्यों के नहीं अतः मनुष्यों को उचित है कि देवताओं के निमित्त भी पशु मार कर उनको मांस न चढ़ावें और न स्वयं खावें। कारण कि देवता और मनुष्यों के लिये ईश्वर ने फल फूल मेवा आदि अनेक उत्तम पदार्थ बनाये हैं। अतः मनुष्य को निरामिष भोजन करना उचित है।

प्रश्न—मांस खाने से क्या हानि होती है?

---

* आपत्सु विहितं स्तैन्यं विशिष्टं च महीयसः।
विप्रेण प्राणरक्षार्थं कर्तव्यमिति निश्चयः॥

† विश्वामित्रो जहारैव कृत बुद्धिः श्वजाघनीं।
ततः समारभत्कर्म दैवं पित्र्यं च भारत॥ (म० भा०)

‡ यक्ष रक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवा नामश्नताहविः॥

झरने के पास एक धनी (चाण्डाल) उड़द या भुने हुए चने खा रहा था । ऋषि ने प्राण रक्षा का और कोई उपाय न देख कर चाण्डाल से ही उसका उच्छिष्ट मांग कर खा लिया । चना खाने के बाद जब चाण्डाल ने उच्छिष्ट जल देना चाहा तब ऋषि ने कहा कि—"मैं तुम्हारा उच्छिष्ट जल नहीं पीता । चण्डाल ने कहा मेरा झूठा अन्न तो तूने खा लिया और जल पीने से क्या पतित होता है । ऋषि ने कहा मैं अनाहार से मर रहा था इस लिये प्राण रक्षार्थ उच्छिष्ट भी खा लिया परन्तु जल तो मेरे सामने ही झरने से आ रहा है इस लिये तेरा झूठा क्यों पीऊँ ।"

इसी प्रकार-महाभारत शान्तिपर्व में लिखा है कि-"एक समय द्वादश वर्ष पर्यन्त घोर अनावृष्टि हुई । ऐसे भयानक दुर्भिक्ष के कारण महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त क्षुधातुर होकर घर छोड़ कर अन्न की खोज में इधर उधर भ्रमण करते हुए अरण्य में, प्राणि-घातक हिंस्र चण्डालों का एक ग्राम देख कर उसी में प्रविष्ट हुए परन्तु उस ग्राम में कुछ न प्राप्त हुआ तो हा कष्ट ! ऐसा कह कर दुर्बलता के कारण किसी चाण्डाल के गृह में गिर पड़े और किसी उपाय से प्राणरक्षा सोचने लगे । थोड़ी देर में उस चाण्डाल के गृह में उसी रोज मारे हुए कुक्कुर का मांस देखने में आया । उसको देख कर विश्वामित्र ने सोचा कि मैं किसी न किसी तरह से इस मांस को अवश्य ही अपहरण करूं क्योंकि इसके सिवाय इस समय प्राण रक्षा का और कोई उपाय नहीं दीखता है, आपत्काल में चोरी करने पर भी महात्माओं के गौरव की हानि नहीं होती है और शास्त्र में भी कहा है कि "आपत्काल में प्राणरक्षार्थ

ब्राह्मण चोरी* भी कर सकता है। ऐसा विचार करके विश्वामित्र† ने "श्वान का मांस चुरा कर देव पितृ कार्य करके भोजन कर लिया।" इति॥

भक्ष्याभक्ष्य का विचार।

प्रश्न—मांस खाना उचित है वा अनुचित है ?

उ०—यदि शाकादि अन्नाहार सर्वथा ही न मिले तो मांसाहार करके भी प्राणों की रक्षा करना चाहिये, और शाकादि मिलते हुये मांसाहार कभी न करना चाहिये, क्योंकि—"मद्य और मांस ये‡ राक्षस भूत पिशाचादिकों के भक्षण हैं, देवता और मनुष्यों के नहीं अतः मनुष्यों को उचित है कि देवताओं के निमित्त भी पशु मार कर उनको मांस न चढ़ावें और न स्वयं खावें। कारण कि देवता और मनुष्यों के लिये ईश्वर ने फल फूल मेवा आदि अनेक उत्तम पदार्थ बनाये हैं। अतः मनुष्य को निरामिष भोजन करना उचित है।

प्रश्न—मांस खाने से क्या हानि होती है ?

---

* आपत्सु विहितं स्तैन्यं विशिष्टं च महीयसः।
विप्रेण प्राणरक्षार्थं कर्तव्यमिति निश्चयः॥

† विश्वामित्रो जहारैव कृत बुद्धिः श्वजाघनीं।
ततः समारभत्कर्म दैवं पित्र्यं च भारत॥ (म० भा०)

‡ यच्च रक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवा नामश्नताहविः॥ (अत्रि)

> झरने के पास एक धनी (चाण्डाल) उड़द या भुने हुए चने खा रहा था। ऋषि ने प्राण रक्षा का और कोई उपाय न देख कर चाण्डाल से ही उसका उच्छिष्ट मांग कर खा लिया। चना खाने के बाद जब चाण्डाल ने उच्छिष्ट जल देना चाहा तब ऋषि ने कहा कि—"मैं तुम्हारा उच्छिष्ट जल नहीं पीता। चण्डाल ने कहा मेरा झूठा अन्न तो तूने खा लिया और जल पीने से क्या पतित होता है। ऋषि ने कहा मैं अनाहार से मर रहा था इस लिये प्राण रक्षार्थ उच्छिष्ट भी खा लिया परन्तु जल तो मेरे सामने ही झरने से आ रहा है इस लिये तेरा झूठा क्यों पीऊँ।"

इसी प्रकार-महाभारत शान्तिपर्व में लिखा है कि-"एक समय द्वादश वर्ष पर्यन्त घोर अनावृष्टि हुई। ऐसे भयानक दुर्भिक्ष के कारण महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त क्षुधातुर होकर घर छोड़ कर अन्न की खोज में इधर उधर भ्रमण करते हुए अरण्य में, प्राणि-घातक हिंस्र चण्डालों का एक ग्राम देख कर उसी में प्रविष्ट हुए परन्तु उस ग्राम में कुछ न प्राप्त हुआ तो हा कष्ट! ऐसा कह कर दुर्बलता के कारण किसी चाण्डाल के गृह में गिर पड़े और किसी उपाय से प्राणरक्षा सोचने लगे। थोड़ी देर में उस चाण्डाल के गृह में उसी रोज मारे हुए कुक्कुर का मांस देखने में आया। उसको देख कर विश्वामित्र ने सोचा कि मैं किसी न किसी तरह से इस मांस को अवश्य ही अपहरण करूं क्योंकि इसके सिवाय इस समय प्राण रक्षा का और कोई उपाय नहीं दीखता है, आपत्काल में चोरी करने पर भी महात्माओं के गौरव की हानि नहीं होती है और शास्त्र में भी कहा है कि "आपत्काल में प्राणरक्षार्थ

ब्राह्मण चोरी* भी कर सकता है। ऐसा विचार करके विश्वामित्र† ने "श्वान का मांस चुरा कर देव पितृ कार्य करके भोजन कर लिया।" इति॥

भक्ष्याभक्ष्य का विचार।

प्रश्न—मांस खाना उचित है वा अनुचित है ?

उ०—यदि शाकादि अन्नाहार सर्वथा ही न मिले तो मांसाहार करके भी प्राणों की रक्षा करना चाहिये, और शाकादि मिलते हुये मांसाहार कभी न करना चाहिये, क्योंकि— "मद्य और मांस ये‡ राक्षस भूत पिशाचादिकों के भक्षण हैं, देवता और मनुष्यों के नहीं अतः मनुष्यों को उचित है कि देवताओं के निमित्त भी पशु मार कर उनको मांस न चढ़ावें और न स्वयं खावें। कारण कि देवता और मनुष्यों के लिये ईश्वर ने फल फूल मेवा आदि अनेक उत्तम पदार्थ बनाये हैं। अतः मनुष्य को निरामिष भोजन करना उचित है।

प्रश्न—मांस खाने से क्या हानि होती है ?

---

* आपत्सु विहितं स्तैन्यं विशिष्टं च महीयसः।
विप्रेण प्राणरक्षार्थं कर्त्तव्यमिति निश्चयः॥

† विश्वामित्रो जहारैव कृत बुद्धिः श्वजाघनीं।
ततः समारभत्कर्म दैवं पित्र्यं च भारत॥ (म० भा०)

‡ यक्ष रक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवा नामश्नताहविः॥ (अत्रि)

झरने के पास एक धनी (चाण्डाल) उड़द या भुने हुए चने खा रहा था । ऋषि ने प्राण रक्षा का और कोई उपाय न देख कर चाण्डाल से ही उसका उच्छिष्ट मांग कर खा लिया । चना खाने के बाद जब चाण्डाल ने उच्छिष्ट जल देना चाहा तब ऋषि ने कहा कि—"मैं तुम्हारा उच्छिष्ट जल नहीं पीता । चण्डाल ने कहा मेरा झूठा अन्न तो तूने खा लिया और जल पीने से क्या पतित होता है । ऋषि ने कहा मैं अनाहार से मर रहा था इस लिये प्राण रक्षार्थ उच्छिष्ट भी खा लिया परन्तु जल तो मेरे सामने ही झरने से आ रहा है इस लिये तेरा झूठा क्यों पीऊँ ।"

इसी प्रकार-महाभारत शान्तिपर्व में लिखा है कि—"एक समय द्वादश वर्ष पर्यन्त घोर अनावृष्टि हुई । ऐसे भयानक दुर्भिक्ष के कारण महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त क्षुधातुर होकर घर छोड़ कर अन्न की खोज में इधर उधर भ्रमण करते हुए अरण्य में, प्राणि-घातक हिंस्र चण्डालों का एक ग्राम देख कर उसी में प्रविष्ट हुए परन्तु उस ग्राम में कुछ न प्राप्त हुआ तो हा कष्ट ! ऐसा कह कर दुर्बलता के कारण किसी चाण्डाल के गृह में गिर पड़े और किसी उपाय से प्राणरक्षा सोचने लगे । थोड़ी देर में उस चाण्डाल के गृह में उसी रोज मारे हुए कुक्कुर का मांस देखने में आया । उसको देख कर विश्वामित्र ने सोचा कि मैं किसी न किसी तरह से इस मांस को अवश्य ही अपहरण करूं क्योंकि इसके सिवाय इस समय प्राण रक्षा का और कोई उपाय नहीं दीखता है, आपत्काल में चोरी करने पर भी महात्माओं के गौरव की हानि नहीं होती है और शास्त्र में भी कहा है कि "आपत्काल में प्राणरक्षार्थ

ब्राह्मण चोरी* भी कर सकता है। ऐसा विचार करके विश्वामित्र† ने "श्वान का मांस चुरा कर देव पितृ कार्य करके भोजन कर लिया।". इति॥

भक्ष्याभक्ष्य का विचार।

प्रश्न—मांस खाना उचित है वा अनुचित है?

उ०—यदि शाकादि अन्नाहार सर्वथा ही न मिले तो मांसाहार करके भी प्राणों की रक्षा करना चाहिये, और शाकादि मिलते हुये मांसाहार कभी न करना चाहिये, क्योंकि—"मद्य और मांस ये‡ राक्षस भूत पिशाचादिकों के भक्षण हैं, देवता और मनुष्यों के नहीं अतः मनुष्यों को उचित है कि देवताओं के निमित्त भी पशु मार कर उनको मांस न चढ़ावें और न स्वयं खावें। कारण कि देवता और मनुष्यों के लिये ईश्वर ने फल फूल मेवा आदि अनेक उत्तम पदार्थ बनाये हैं। अतः मनुष्य को निरामिष भोजन करना उचित है।

प्रश्न—मांस खाने से क्या हानि होती है?

---

* आपत्सु विहितं स्तैन्यं विशिष्टं च महीयसः।
विप्रेण प्राणरक्षार्थं कर्त्तव्यमिति निश्चयः॥

† विश्वामित्रो जहारैव कृत बुद्धिः श्वजाघनीं।
ततः समारभत्कर्म दैवं पित्र्यं च भारत॥ (म० भा०)

‡ यक्ष रक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवा नामश्नताहविः॥ (अत्रि)

झरने के पास एक धनी (चाण्डाल) उड़द या भुने हुए चने खा रहा था। ऋषि ने प्राण रक्षा का और कोई उपाय न देख कर चाण्डाल से ही उसका उच्छिष्ट मांग कर खा लिया। चना खाने के बाद जब चाण्डाल ने उच्छिष्ट जल देना चाहा तब ऋषि ने कहा कि—"मैं तुम्हारा उच्छिष्ट जल नहीं पीता। चण्डाल ने कहा मेरा झूठा अन्न तो तूने खा लिया और जल पीने से क्या पतित होता है। ऋषि ने कहा मैं अनाहार से मर रहा था इस लिये प्राण रक्षार्थ उच्छिष्ट भी खा लिया परन्तु जल तो मेरे सामने ही झरने से आ रहा है इस लिये तेरा झूठा क्यों पीऊँ।"

इसी प्रकार—महाभारत शान्तिपर्व में लिखा है कि—"एक समय द्वादश वर्ष पर्यन्त घोर अनावृष्टि हुई। ऐसे भयानक दुर्भिक्ष के कारण महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त क्षुधातुर होकर घर छोड़ कर अन्न की खोज में इधर उधर भ्रमण करते हुए अरण्य में, प्राणि-घातक हिंस्र चण्डालों का एक ग्राम देख कर उसी में प्रविष्ट हुए परन्तु उस ग्राम में कुछ न प्राप्त हुआ तो हा कष्ट! ऐसा कह कर दुर्बलता के कारण किसी चाण्डाल के गृह में गिर पड़े और किसी उपाय से प्राणरक्षा सोचने लगे। थोड़ी देर में उस चाण्डाल के गृह में उसी रोज मारे हुए कुक्कुर का मांस देखने में आया। उसको देख कर विश्वामित्र ने सोचा कि मैं किसी न किसी तरह से इस मांस को अवश्य ही अपहरण करूं क्योंकि इसके सिवाय इस समय प्राण रक्षा का और कोई उपाय नहीं दीखता है, आपत्काल में चोरी करने पर भी महात्माओं के गौरव की हानि नहीं होती है और शास्त्र में भी कहा है कि "आपत्काल में प्राणरक्षार्थ

ब्राह्मण चोरी* भी कर सकता है। ऐसा विचार करके विश्वामित्र† ने "श्वान का मांस चुरा कर देव पितृ कार्य करके भोजन कर लिया।" इति ॥

भक्ष्याभक्ष्य का विचार ।

प्रश्न—मांस खाना उचित है वा अनुचित है ?

उ०—यदि शाकादि अन्नाहार सर्वथा ही न मिले तो मांसाहार करके भी प्राणों की रक्षा करना चाहिये, और शाकादि मिलते हुये मांसाहार कभी न करना चाहिये, क्योंकि—"मद्य और मांस ये‡ राक्षस भूत पिशाचादिकों के भक्षण हैं, देवता और मनुष्यों के नहीं अतः मनुष्यों को उचित है कि देवताओं के निमित्त भी पशु मार कर उनको मांस न चढ़ावें और न स्वयं खावें। कारण कि देवता और मनुष्यों के लिये ईश्वर ने फल फूल मेवा आदि अनेक उत्तम पदार्थ बनाये हैं। अतः मनुष्य को निरामिष भोजन करना उचित है।

प्रश्न—मांस खाने से क्या हानि होती है ?

---

* आपत्सु विहितं स्तैन्यं विशिष्टं च महीयसः ।
विप्रेण प्राणरक्षार्थं कर्त्तव्यमिति निश्चयः ॥

† विश्वामित्रो जहारैव कृत बुद्धिः श्वजाघनीं ।
ततः समारभत्कर्म दैवं पित्र्यं च भारत ॥ (म० भा०)

‡ यक्ष रक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् ।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवा नामश्नताहविः ॥ (अत्रि)

उ०—मांस खाना-नीति, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सब से विरुद्ध अर्थात् हानिकारक है। अतः धर्मार्थ काम मोक्ष चाहने वाले को मांस कभी न खाना चाहिये।

(नैतिक दृष्टि से मांसाहार का निषेध)

प्रश्न—मांस खाने से नीति की क्या हानि होती है ?

उ०—चाहे आस्तिक हो वा नास्तिक हो यदि न्याय की दृष्टि से देखा जाय तो मांस खाना अनीति (अन्याय) है कारण कि मांस कुछ "घास* लकड़ी नहीं है न वह किसी वृक्ष के लगता है जो न्याय से प्राप्त हो सके, किन्तु निरपराधी जन्तुओं का निर्दयता से प्राण हनन करने पर मिलता है, इसलिये मांस खाना दूषित अर्थात् नीति से विरुद्ध है।" नीति कहती है कि संसार में प्राण से अधिक प्रिय वस्तु कोई नहीं है। जैसे मनुष्य को अपना प्राण प्यारा † है वैसे ही सर्व जीवों को अपना प्राण प्रिय है। यदि मांस खाने वाले का कोई प्राण हनन करे तो उसको कितना भारी दुःख पहुँचता है, इसी प्रकार पशु आदि के प्राण लेने पर उनको अपार दुःख होता है। अतः बिना अपराध किसी को दुःख देना अन्याय अर्थात् पाप है।

प्रश्न—प्रायः मांसाहारी कहते हैं कि हम स्वयं जानवरों को नहीं मारते, हम लोग तो मोल लेकर मांस खाते हैं, इसलिये

---

* नहि मांसं तृणात्काष्ठा दुपलाद्वापि जायते ।
हत्वाजंतुं ततो मांसं तस्माद्दोषस्तु भक्षणे ॥ (म० भा०)

† यथात्मनः प्रियाः प्राणाः सर्वेषां प्राणिनां तथा ॥

हम पाप के भागी नहीं हो सकते, किन्तु उनके मारने का दोष कसाई व वधिक को लगेगा ।

उ०—ऐसा कहने से मांस खाने वाले पाप से छूट नहीं सकते। न्यायाधीश मनुजी ने तो यहां तक कहा है कि "जानवर को वध करने की सलाह देने वाला, मांस को साफ़ करने वाला, जीव को वध करने वाला, मांस को मोल लेने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, खानेवाला एवं खिलाने वाला ये आठों ही वधिक के समान अपराधी व *पापी हैं। इस लोक में जिसके मांस को जो खाता है, परलोक में वह उसके मांस को खायगा पण्डितों ने मांस शब्द का यही अर्थ कियां है ।

अतः मांस खाना नीति धर्म से विरुद्ध है।

धार्मिक दृष्टि से मांसाहार का निषेध ।

प्रश्न—मांस खाने से धर्म की कैसे हानि होती है ?

उ०—हिन्दुओं के सब वेद शास्त्रों ने "*अहिंसा परमोधर्मः*" कहा है अर्थात् प्राणि मात्र पर दया करना मनुष्य का

---

* अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥
(मनु० ५, ५१)

मांस भक्षयितामुत्र तस्य मांस मिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
(मनुजी ५, ५५)

परम धर्म है। इस विषय को अन्य धर्मचार्यों ने भी एक मत होकर मुक्त कंठ से समर्थन किया है कि अपने शत्रु पर भी दया करो, किसी को भी पीड़ा न पहुँचाओ। हजरत ईसा ने बाइबिल में फ़रमाया है कि "जो तुम्हारे बायें गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम दाहिना गाल भी उसके सामने करदो, तुम अपने वैरियों के साथ भी प्यार करो, जो तुम्हें शाप देवें उनको आशीश देओ, जो तुम्हारी बुराई करें उनकी भलाई करो, जो तुम्हारा अपमान करें और तुम्हें सतावें उनके लिये भी प्रार्थना करो। जिससे तुम स्वर्गवासी पिता की सन्तान होवो अर्थात् ईश्वर के पुत्र कहलाओ"। "इसी प्रकार हदीस में लिखा है कि— "जनाब रिसालतमाब सले अल्लाह अलहे व सल्लम ने फ़रमाया है कि सम्पूर्ण सृष्टि अल्लाह की औलाद है, इसलिये मनुष्य को चाहिये कि जैसी सहानुभूति अपनी औलाद के साथ करे वैसी ही सारी सृष्टि के साथ करे।"

अत: करुणामय होना वा एक दूसरे के साथ सहानुभूति प्रकट करना समस्त धर्मों का उद्देश्य है अर्थात् दया ही सब धर्मों का मूल है।

"दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छांड़िये, जब लग घट में प्रान॥"

अब सर्व धर्मावलम्बियों को विचारना चाहिये कि मांस खाने से दया धर्म कैसे रह सक्ता है। यह पहिले कहा गया है कि मांस कुछ घास लकड़ी नहीं है न वह किसी वृक्ष के लगता है, जो अहिंसा से प्राप्त हो सके किन्तु निरपराधी जीवों की निर्दयता से हिंसा करने पर ही मिलता है, इसलिये मांस खाना दूषित अर्थात् धर्म से विरुद्ध है।

यदि इस विषय में और भी सूक्ष्म अनुसन्धान किया जाय तो मालूम होगा कि मांसाहार मनुष्य को किस प्रकार धर्म से विमुख करके आसुरी गुणों को उत्पन्न करता है।

मांस भक्षण करने से तमोगुण की वृद्धि होकर मनुष्य में निर्दयता, कठोरता, क्रूरता, गर्व, अभिमान, क्रोध और अज्ञान इत्यादि दुर्गुण आ जाते हैं। मांसाहारी की बुद्धि तमोगुण से ढक कर विवेक हीन और मंद हो जाती है, इसलिये वह धर्मा-धर्म के विषय में कुछ नहीं जानता अर्थात् *वह अधर्म को धर्म, पाप को पुण्य, हित को अहित मान कर मानव धर्म को भूल जाता है।

प्रश्न—यदि मांस खाने से बुद्धि मंद होती तो वर्त्तमान समय में यूरोपियन लोग जगत् प्रसिद्ध बुद्धिमान् न होते, जो प्रायः मांस ही खाते हैं?

उ०—इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मांस खाने ही से बुद्धि बढ़ती है। यदि मांस खाने ही से बुद्धि बढ़ती तो, भरत-खण्ड के प्राचीन ऋषि मुनि जन जो केवल वनस्पति और कंदमूल फल आदि का ही आहार करते थे, वें ऐसे बुद्धिमान् थे कि—जिन के सिद्धान्तों पर आज दिन पर्य्यन्त संसार के समस्त कार्य व्यवहार चले जाते हैं और जिनके गम्भीर आशयों को जानने के लिये, यूरो-पियन विद्वज्जन सदैव उद्यत रहते हैं, तथापि उनकी विद्वत्ता का पार आज दिन लौं उन्होंने नहीं पाया है।

---

* अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तामसा वृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥ (गीता०)

"बहुत से विजेटेरियन (केवल वनस्पति खाने वाले) विद्वानों का कथन है कि यूनान देश में बड़े २ जगत् प्रसिद्ध विद्वान् और वैज्ञानिक महात्मा हुए हैं, जिनके नाम से वह देश प्रख्यात है, मांसाहारी नहीं थे।

"मिस्टर डबल्यू० ए० डेहना, आर० एम० डी० नामी यूरोपियन विद्वान् अपने "फ्रैंडली विजिटेरियन" नामक पुस्तक में लिखते हैं कि, जब से अँग्रेज लोग मांस अधिक खाने लगे तब से इस जाति में अनेक कुरीतियां प्रचलित होगई हैं।"

सारांश यह है कि—जब मनुष्य का चित्त मांस खाने को चाहता है, तब उस की मद्य पर भी अवश्य रुचि दौड़ती है, क्योंकि मांस और मदिरा दोनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहां यह दोनों मित्र इकट्ठे होते हैं वहां व्यभिचारादि अनेक दोष भी अवश्य ही आ खड़े होते हैं।

इस विषय में हम एक कवि और भिक्षुक के संवाद का श्लोक उद्धृत करते हैं।

"किसी कवि ने एक भिक्षुक के समीप मांस देख कर पूँछा कि हे भिक्षो! क्या मांस खाते हो * मांस खाना क्या उचित है, भिक्षुक ने उत्तर दिया कि हाँ खाता हूँ परन्तु विना मद्य के अकेले मांस के खाने से क्या है अर्थात् स्वाद नहीं आता, तब कवि ने

---

* भिक्षो! मांस निषेवणं किमुचितं किं तेन मद्यं विना, मद्यं चापि तव प्रियं प्रिय महो! वारांगनाभिस्सह। वेश्या द्रव्य रुचिः कुतस्तव धनं द्यूतेन चौर्य्येणवा, चौर्य्य द्यूत परिग्रहोऽपि भवतो भ्रष्टस्य काऽन्या गतिः॥

(सुभा०)

पूँछा क्या मद्य भी तुमको प्रिय है, भिक्षुक ने उत्तर दिया कि वाराङ्गनाओं के साथ मद्य हमको बहुत प्रिय है, कवि ने कहा कि वेश्याओं की रुचि तो धन में है सो धन तुम्हारे पास कहां, भिक्षुक ने उत्तर दिया कि जुआ खेलने और चोरी करने से धन प्राप्त हो जाता है, कवि ने पूँछा कि आपको जुआ और चोरी भी अङ्गीकार है, तब भिक्षुक ने उत्तर दिया कि धर्म से भ्रष्ट की और क्या गति है अर्थात् मांस खांयगे तब हमें सब कुछ अनर्थ करना ही पड़ेगा।

अतः मांस खाना धर्म से सर्वथा विरुद्ध है। इति।

(डाक्टरी मत से मांस का निषेध)

धर्म से मांस का निषेध बतला कर अब डाक्टरी मत से मांसाहार खण्डन किया जाता है। डाक्टर किंग्स फोर्ड, डेवी, लायन्स, काब और सी० ए० ओवन आदि साइन्स जानने वालों का मत है कि मनुष्य के भीतरी और बाहिरी अङ्ग इस बात की साक्षी देते हैं कि मनुष्य का स्वाभाविक भोजन (अन्न, कंद, मूल, फल, फूल आदि) वनस्पति है और मांसाहार मानुषी प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल है, कारण कि मांस में केवल एक भाग खुराक और तीन भाग पानी मिला रहता है। और वह पानी भी फलादि शाक पात के शुद्ध पानी के मुकाबले में बड़ा गंदा अर्थात् जानवरों के बिगड़े मांस और रुधिर के साथ मिला हुआ होने से हानिकारक है। अतः वनस्पति की अपेक्षा मांस कुछ विशेष गुणकारी नहीं है। वनस्पति का आहार चित्त को प्रसन्न रखने वाला, बल वीर्य्य और बुद्धि को बढ़ाने वाला, दुष्टता का दमन करने

वाला, शीघ्र पचने वाला, स्वादिष्ट और स्वास्थ्य तथा आयु की वृद्धि करने वाला, एवं क्षमा, दया, शान्त्यादि दैवी गुणों को उत्पन्न करने वाला है। और मांसाहार चित्त को मलीन करके दम्भ, दर्प, क्रोध, पारुष्य, अज्ञान इत्यादि आसुरी गुणों को उत्पन्न करता है, तथा अजीर्ण, मंदाग्नि संग्रहणी, स्नायु पीड़ा, भगंदर आदि अनेक रोगों को उत्पन्न करने वाला है।

"इस विषय में भगंदर रोग के स्पेशियेलिस्ट प्रसिद्ध डाक्टर वेल० एम० डी० एफ० आर० एफ० पी० एस० आदि ने अपनी (The Cancor Scourage and how to destroy it) नाम के प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है कि इस संसार की आवादी में २,५०,००,००० दो करोड़ पचास लाख और केवल इंग्लैण्ड और वेल्स में ही ३०,००० तीस हजार मनुष्य प्रति वर्ष इस दुष्ट रोग से मरण शरण होते हैं, और इस रोग के होने का कारण मांसाहार को वतला कर इस आमिष भोजन के त्याग की सिफ़ारिश करते हैं। जिस समय इस रोग के होने के चिह्न मालूम पड़ें उसी समय रोगी यदि तुरंत ही मांस खाना छोड़ दे तो उसके जीने की आशा की जा सकती है। और उसे शस्त्र क्रिया कराने की भी आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु पहिले से सचेत न रहकर वह मांसाहार नहीं त्यागता है तो मृत्यु सदा उसके सिर पर सवार हुए रहती है और देहान्त होने के पहिले उसे शस्त्र क्रिया करावने पर असह्य कष्ट सहने करने पड़ते हैं। इस कारण प्रथम ही से इस रोग से वचे रहने के लिये मांसाहार त्याग देना अत्यन्त हितकर है। डाक्टर वेल वर्तमान समय में भगंदर रोग के बड़े अनुभवी चिकित्सक माने जाते हैं। उन्होंने अपनी उपर्युक्त पुस्तक में शाकाहार से इस भगंदर रोग से मुक्त किये अनेक रोगियों के रक्त के फोटो देकर यह सिद्ध किया है कि शाकाहार

ही इस रोग की मुख्य चिकित्सा है।" "इसी प्रकार स्नायु पीड़ा का रोग भी डाक्टर विक्टर पोचेट, डाक्टर रोबर्टस एच, पकर्स एम० डी० एफ, आर, सी० एस० डाक्टर ल्युकास शेमोनियर आदि बहुत से प्रसिद्ध डाक्टरों के मत से मांसाहार ही से होता है"। "तथा बच्चों की अकाल मृत्यु के विषय में सन् १८९९ की ब्रिटिश मेडिकल एसोसियेशन के अध्यक्ष प्रसिद्ध डाक्टर जेकसन एम० डी० ने उक्त सभा में बहुत विवेचन किया था। उन्होंने बच्चों के मा बापों को मांस निषेध द्वारा अपनी प्यारी सन्तानों को अकाल मृत्यु से बचाने के लिये बहुत कुछ उपदेश दिया है। "तथा डाक्टर क्लेगी महाशय अपनी रची हुई पुस्तक 'इलिमेण्टस आफ़ दि प्राक्टिस आफ़ फ़िजिक्स (Elements of the Practice of Physics) में लिखते हैं कि गाउट डायथिसिस (Goute Diathesis) का रोग केवल रोटी और दूध खाने से जाता रहता है। इत्यादि अनेक डाक्टरों के प्रमाणों से अन्नाहार की अपेक्षा मांसाहार रोगीष्ट, कमताक़त और खर्चीला मालूम होता है। "प्रायः मांसाहारी कहते हैं कि अंग्रेज लोग मांस भक्षण करने ही से शरीर में बड़े बलवान् और स्वस्थ देखने में आते हैं ? तो यह कहना भी उनका यथार्थ नहीं, अंग्रेज़ों के बल, बुद्धि और स्वास्थ्य का साधन, शुद्ध-जल वायु का सेवन और व्यायाम आदि नित्य कर्म हैं। ये लोग अपने प्रत्येक कार्य्य, अर्थात् खाना, पीना, सोना, जागना, बैठना, खेलना टहलना, फिरना, काम करना, सब अनुमान के साथ और नियत समय पर करते हैं। नियम भंग कदापि वे नहीं करते, यही कारण उनके बलवान और नीरोग होने का है। "यदि भारतवासी भी इन नियमों को .पूरे तौर पर पालन करें तो वे भी किसी बात में न्यून नहीं रह सकते।

"हमारे यहाँ कई पहलवान लोग, ब्रह्मचर्य और व्यायाम तथा खाने पीने के नियम निभाते हैं वे यूरोप के सर्व साधारण लोग पालते हैं, तिस पर भी कई वार सुनने में आया है कि अमुक हिन्दुस्तानी मल्ल की अमुक गोरे से कुश्ती हुई, जिसमें गोरा हार गया। "प्राचीनकाल में इंग्लिस्तान और वेल्स के निवासी आलू के सिवाय मांस आदि नहीं खाते थे वरन वे लोग अब भी दूध और मक्खन के साथ आलू खाते हैं तो क्या ये लोग पहिले शरीर और बल पराक्रम में न्यून थे जो अब मांसाहारी होने से अधिक बलवान होगये ? नहीं, यह केवल उनके स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का यथावत् पालन और शुद्ध जल वायु का कारण है।

"सुना जाता है कि आयर्लैण्ड आदि प्रान्तों के लोग तो अब भी मांस बहुत कम खाते हैं और इन्हीं आयरिश लोगों की अधिक संख्या सरकारी सेना में नौकर है।"

"इसी प्रकार स्काटलैंड निवासी भी विशेष कर अन्न और शाक पात पर ही निर्वाह करते हैं परन्तु इंग्लिस्तान के लोगों की अपेक्षा अधिक बलवान और तगड़े होते हैं। प्रोफेसर चार्लस का कथन है कि अँग्रेजों की अपेक्षा स्काटलैण्ड के निवासी जो विशेष कर अन्नाहार-शाक पात आदि ही खाते हैं वे अधिक बलवान और हृष्ट पुष्ट होते हैं।

देखिये हमारे देश में मथुरा के चौबे और ग्रामीण किसान लोग, जो अधिकतर दूध दही और शाक पात ही खाते हैं, नगर निवासियों की अपेक्षा कैसे स्वास्थ्य सम्पन्न और बड़े बलवान होते हैं।

तात्पर्य-मांस की अपेक्षा वनस्पति अधिक बलकारक होती है। "मिस्टर-लार्ड ब्रुक और लार्ड लोमरसंग साहब लिखते हैं कि अन्न से ही मांस बनता है इसलिये अन्न और दूध से बढ़कर उत्तम और बल वृद्धि करने वाली कोई वस्तु नहीं है। जैसी इनमें शरीर के पोषण की शक्ति है. वैसी मांस में नहीं। इसके सिवाय वनस्पति और दूध में अस्थि को बनाने वाला भाग विशेष है। मांस में बहुत ही कम है, जब मनुष्य और चौपाये उत्पन्न होते हैं तो प्रथम उनका जीवनाधार केवल दूध होता है। यदि उनको जन्मते ही मांस खिलाया जाय तो प्रथम दिवस ही उनकी समाप्ति हो जावे। हमारे शरीर पोषण के लिये जिन २ वस्तुओं की आवश्यकता है वे सब दूध में मौजूद हैं और दूध वनस्पति का सत है। अतः मनुष्य को दूध और वनस्पति ही खाना चाहिये।

आर्थिक दृष्टि से मांस का निषेध।

वैद्यक विधि से मांस का खण्डन करके अब आर्थिक दृष्टि से मांसाहार हानिकारक बताया जाता है।

मांसाहार की वृद्धि होने के कारण अन्यान्य देशों को और विशेष हमारे पवित्र भारतवर्ष के कृषि व्यवसाय को जो अनन्त हानि पहुँची है, इसे सब संसार जानता है। घी, दूध, दही और मट्ठा वैसे ही अनेक प्रकार की मिठाइयां जो हमें जानवरों के प्रसाद से मिलती हैं उनके अभाव की असाधारण वृद्धि हुई है, इसे अब कौन नहीं जानता। जिस प्रकार कृषि उपयोगी पशुओं की कमी के कारण अनाज, घी आदि पदार्थ महँगे हुए हैं, इसी प्रकार इस पशु धन के अभाव से इस देश की आर्थिक दशा

भी बहुत विगड़ चली है, और दिन व दिन विगड़ती ही जारही है इस बात का इतिहास साक्षी है।

"आज से छः सौ वर्ष पहिले अलाउद्दीन खिलजी के समय खाने की चीजों का भाव हर प्रति रुपये इस प्रकार थाः—

संख्या	पदार्थ नाम	भाव प्रति रुपया
१	गेहूं	११९ सेर
२	जौ	२२४ "
३	चावल	१७९ "
४	उड़द	१७९ "
५	चना	१७९ "
६	मटर	२९६ "
७	बूरा खांड	१५ "
८	लाल खांड	४४ "
९	घृत	३३ "

हा, वह सस्ती कहां गई ? कोई इसका अन्दाजा भी नहीं रख सकेगा।

तात्पर्य—इस समय हमें ५ सेर गेहूं और ४ चार सेर दूध तथा आध सेर घृत पैसे खर्च करने पर भी अच्छे मिलने मुश्किल हो गये हैं। इसका कारण यही है कि हमें घृत दूध, और अन्न

उपजा कर देने वाले गो, बैल आदि पशुओं का अभाव होता जा रहा है। प्रति वर्ष भारत में किस कदर गो आदि पशु-वध होता है।

१-४-२३ से ३१-३-२४ तक के वध हुये पशुओं का चित्र।

पशु नाम	वध-संख्या
गाय	४, ४४, ९२४
भैंस	१११०१८
बैल	६८०१७
बछड़े	१६९१४
भेड़ बकरियां...	२८८९१२४
कुल योग ...	३५२९९९७

उपर्युक्त पशु वध की संख्या जून १९२५ ई० के १-६ शुद्धि समाचार पत्र से ली गई है। परन्तु अन्य पत्रों से यह संख्या गोवध के विषय में स्वल्प मालूम होती है। ६-९-२५ के दैनिक भारत मित्र में लिखा हुआ था कि इस समय भारत भूमि में एक करोड़ गो हत्या प्रति वर्ष होती है।

यदि इस प्रकार गोवध का कार्य्य जारी रहा तो निःसंदेह १५-२० वर्ष के भीतर ही भारतवासियों को घी, दूध के स्वप्न आयँगे, और इसके सिवाय भारतवर्ष का कृषि व्यवसाय सर्वथा नष्ट भ्रष्ट होकर एक रुपये का सेर अन्न भी मिलना कठिन हो जायगा।

इस प्रकार कृषीय और आर्थिक सिद्धान्त भी हमें विश्वास कराते हैं कि जानवरों का जीवन हमारे लिये बड़ा उपकारी और उपयोगी है, अर्थात् उनका जीवन ही हमारा जीवन और उनका मरण ही हमारी मृत्यु है।

हमारे पर अनेक उपकार करने वाले उपयोगी जानवर हमारी ओर से जहां उनके लालन पालन की आशा रखते हैं, वहाँ हमारे मांसाहारी भाई उपकार का बदला प्रत्युपकार से न देकर अपने पापी पेट और जिह्वा स्वाद के लिये इन बेचारे गरीब निर्दोष और निःस्वार्थ भाव से हमारी आवश्यकताओं को पूरी करने वाले अबोल दीन जानवरों को निर्दयता से मार कर खाते हैं। वे स्वदेश के परम शत्रु समझे जा सकते हैं।

"हमारा देश कृषि व्यवसाय में सब देशों से प्रधान है परन्तु गो बैल पशुओं के न मिलने के कारण लाखों कृषिक नष्ट भ्रष्ट होगये हैं और होते जारहे हैं, उन्हें पेट भर के अन्न नहीं मिलता खेती के लिये बैल नहीं मिलते। इस समय कृषकों की बड़ी शोचनीय दशा है।"

"कुछ दिनों से जनता के संमुख गो रक्षा, दूध देने वाले कृष्युपयोगी पशुओं की रक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ है। यह प्रश्न उस समय और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है, जिस समय यह बात ध्यान में आती है कि यदि शीघ्र इसका कुछ उपाय न किया जायगा तो भारतवर्ष के सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो जायगा।

यह निर्विवाद सिद्ध है तथा हमारे नित्य प्रति के अनुभवों से भी यह स्पष्ट है—कि दूध, घृत एवं इनके बने पदार्थों का अभाव होता जारहा है, तथा इनके मूल्य बढ़ रहे हैं, खेती के बैलों का

मिलना कठिन हो रहा है, तथा प्रति वर्ष उनका मूल्य भी बढ़ता जा रहा है। बैलों के निरन्तर बढ़ते हुए अभाव के कारण कृषि तथा उपज पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर भारतवर्ष की सभी विचारशील जातियों का ध्यान आकर्षित होना चाहिये। चाहे वह किसी मत तथा सम्प्रदाय के क्यों न हों। यह प्रश्न भारतवर्ष के जीवन-मरण का प्रश्न है, न कि किसी विशेष मतावलम्बियों का अथवा सम्प्रदाय वालों का।

"यद्यपि कुछेक गणितज्ञों द्वारा हमें यह समझाने की चेष्टा की गई है कि विदेशों को अधिकाधिक अन्न भेजे जाने तथा भारी-भारी करों के कारण ही महँगी बढ़ती जारही है, तथापि हमारा यह अकाट्य प्रमाण है कि सब से अधिक क्षति गोवंश का ह्रास ही कारण है। दूसरे देशों को जो अन्न जाता है, वह तो बन्द भी किया जा सकता है, जैसे कि कई अवसरों पर हुआ है, परन्तु जब घी, दूध देने तथा कृषि कार्य करने वाले पशुओं का अस्तित्व ही न रह जायगा, तब बाहर भेजने का ही प्रश्न नहीं रहता, वरन् कृषि आदि का बन्द हो जाना ही निश्चय है।

ब्रिटिश भारत में २४४२६७००० चौबीस करोड़ बयालीस लाख सड़सट हज़ार, मनुष्य निवास करते हैं, और सन् १९१४-१५ की कृषि सम्बन्धी आंकड़ों के खण्ड १-२ के अनुसार केवल ५०९४६००० पांच करोड़, नौ लाख, छियालीस हज़ार गाय तथा भैंसें हैं जो ५९४३७००० पांच करोड़ चौरानवे लाख सैंतीस हज़ार, पाइन्ट दूध देती हैं, इससे स्पष्ट है कि प्रति मनुष्य को केवल ¼ पाइण्ट (अर्थात् प्रति मनुष्य को तोले-मासे भर) दूध मिलता है। इसका भयंकर परिणाम स्पष्ट है कि जहां स्वीडेन में मनुष्य की जीवनी शक्ति ९० वर्ष है, वहाँ भारत में केवल २३ वर्ष ही

है। भारत में नित्य प्रति रोगों का जो प्रभाव बढ़ रहा है, उसका कारण भी यही है कि घृत दूध के अभाव के कारण मनुष्यों में रोगों के सामना करने की शक्ति नहीं रही है। यदि घृत दूध के सम्बन्ध में शीघ्र ही कोई भारत व्यापी उपाय न किया जायगा तो निश्चय ही आगामी थोड़े ही वर्षों में भारतीय जाति का अस्तित्व लोप हो जायगा।

"इससे भी भयंकर एक और समस्या है। भारत वर्ष भर में २५९५४६००० पचीस करोड़ पचानवें लाख, छियालीस हजार, एकड़ जमीन जोती बोयी जाती है और उस पर अपनी जीविका निर्वाह करने वाले भारत की आबादी के प्रायः तीन चतुर्थांश (२२, ५०, ७८, ४४५) कृषक हैं परन्तु कृष्युपयोगी पशु सन् १९१४-१५ में केवल ५२६४७१०० ही थे। उक्त हिसाब से प्रति एक जोड़ी बैल पीछे २६ एकड़ भूमि पड़ती है। यदि शीघ्र ही गोवंश का संहार न रोका गया तो आगामी दस वर्षों में उक्त साढ़े बाइस करोड़ कृषकों की बेकारी का प्रश्न उपस्थित होगा, जिसका प्रतिकार फिर किसी प्रकार न किया जा सकेगा और देश को एक भारी विप्लव एवं जन संहार के आन्दोलन का सामना करना पड़ेगा।

उपर्युक्त आंकड़ों से यह तो स्पष्ट हो गया है कि भारतीयों की प्राण रक्षा, स्वास्थ्यरक्षा एवं रोटी का प्रश्न हल करने के लिये शीघ्र ही उपाय करना होगा नहीं तो फिर रोग असाध्य हो जायगा।

(गो-रक्षा)

अब इस विषय को समाप्त करके हम-भारत वासी मात्र से यह विनीत प्रार्थना तथा अपील करते हैं। वे चाहें किसी सम्प्रदाय

के हों अथवा किसी श्रेणी के हों, सब को गो रक्षा के लिये कटि-बद्ध होना चाहिये।

इस विषय में सब भारतीयों को मिल कर गोवध रोकने के लिये सरकार से भी प्रार्थना करनी चाहिये।

"क़ाबुल, अरब और फ़ारिस में गोवध नहीं होता और टर्की में भी गोवध को धार्मिक महत्त्व नहीं दिया जाता।"

भारतवर्ष में गो हत्या बढ़ती जारही है इसी कारण से अन्न और घी दूध महँगे होते जा रहे हैं।

दोहा—गो का वध जब से चला, तब से दुःखी जहान।
दूध दही को तरसते, हिन्दू मूसलमान॥
"कास्तकारी डूबती, बैल न आते हाथ।
जमीदार बिन बैल के, बैठ पीटते माथ॥
"गो सम सजनों जगत में, जीव न दूसर कोय।
सब जीवन का जीव गो, गोबिन मरणा होय॥"

❀ छन्द ❀

"अरिहु दन्त तृण धरिहिं तेहि मारत न सबल कोय।
हम सन्तत तृण चरहिं बैन उच्चरहिं दीन होय॥
मधुर न हिन्दुन देहिं कटुक तुरकहि न पियावहिं।
पैजु एक हम जनहि पुत्र जगहित मन भावहिं॥
सुनहु अकब्बर शाह विनवत गौ जोरे करन।
किहि अपराध मोहि मारियत मुए चाम सेवत चरन॥

इस गो विनय के-नरहर कवि के छन्द को सुनकर अकबर बादशाह ने भारतवर्ष में गो-हत्या रोक दी थी। कारण कि गो-माताएं संसार का कल्याण करने वाली हैं यथाः—

"गवां भवति कल्याणं पुत्र पौत्रादि संततिः।
ऐश्वर्य्यं च सदा सौख्यं भवेद्गोवर्धनोत्सवात् ॥१॥
"लक्ष्मीर्या लोक पालानां धेनू रूपेण संस्थिता।
घृतं वहति यज्ञाऽर्थं मम पापं व्यपोहतु ॥२॥
"अग्रतः सन्तुमे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गावां मध्ये वसाम्यहम्" ॥३॥
(मतराज)

अर्थः—गोओं से कल्याण होता है, पुत्र पौत्रादि सन्तानें होती हैं, गोवर्द्धनोत्सव से ऐश्वर्य और सदा सुख होता है। लोक-पालों के यहां गोरूप से जो लक्ष्मी है और यज्ञ के लिये घृत रखती है वह (धेनु रूपी लक्ष्मी) मेरे सब पापों का नाश करे। गोएँ मेरे आगे पीछे तथा हृदय में वास करें और मैं सदा गोओं में ही वास करूँ।

"गावः श्रेष्ठाः पवित्राश्च पावना जगदुत्तमाः।
ऋते दधि घृताभ्यां च नेह यज्ञः प्रवर्तते" ॥ ४ ॥
"पयसा हविषा दध्ना शकृताऽप्यथ चर्मणा।
अस्थि भिश्चोप कुर्वन्ति वालैः शृङ्गैश्च भारत" ॥ ५ ॥
"गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किंचिदिहा च्युत।
इत्येतद्गोषु मे प्रोक्तं माहात्म्यं भरतर्षभ ॥ ६ ॥
"कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चाऽपि पार्थिव।
गवां प्रशस्यते वीर सर्व पाप हरं परम् ॥ ७ ॥

"गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मान विद्यते ।
मातरः सर्व भूतानां गावः सर्व सुख प्रदाः ॥ ८ ॥
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः ।
गावः काम दुहो देव्यो नान्यात्किञ्चित परं स्मृतम् ॥ ९ ॥
(महाभारत)

गौएँ श्रेष्ठ पवित्र और संसार को पवित्र करने वाली उत्तम हैं क्योंकि बिना घी दूध के यज्ञ नहीं हो सकता है। हे भारत ! गौएँ-दूध, दही, घी, गोबर चर्म से तथा अपनी सन्तानों और हड्डी सींगों द्वारा सब प्रकार से संसार का उपकार करती हैं। इस संसार में मैं गौओं के सदृश और किसी धन को नहीं देखता हूँ, (इसीलिये) गौओं का कीर्त्तन, श्रवण, दान, दर्शन, सर्व पाप को हरने वाला है। गौएँ लक्ष्मी का मूल है और गौओं में रहने से कभी पाप नहीं लगता, ये गौ माताएँ सर्व जीवों को सुख देने वाली हैं। गौएँ स्वर्ग की सीढ़ी हैं और स्वर्ग में भी पूज्य होती हैं, गौएँ इच्छानुसार फल देने वाली (साक्षात्) देवियाँ हैं, इससे अधिक और क्या कहा जाय। अतः गौएँ सब देश काल में दर्श-नीय और रक्षणीय पात्र हैं। तथाच—

"महा कोला हले घोरे दुर्दिने देश विप्लवे ।
गवां तृणानि देयानि शीतलं च तथा जलम्" ॥१०॥
"गास्तु ये ताडयन्ती ह सर्व लोकस्य मातरः ।
ते यान्ति रौरवन्नाम नरकं नात्र संशयः ॥ ११ ॥
"गावः कृशातुराः पाल्याः श्रद्धया पितृ मातवत् ।
गिरौ निदाघे सिंहे च शीताऽऽतप भया तुराः ॥१२॥

सर्वेषामेव भूतानां गावः शरण मुत्तमम् ।
गावः पवित्र परमं गावो मङ्गल मुत्तमम् ॥१३॥
"निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम् ।
विराजयति तं देशं पापं चास्याप कर्षति" ॥१४॥

अर्थ—भयंकर महामारी आदि में, दुर्दिन में अर्थात् अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि में, और राष्ट्र परिवर्त्तन में गौओं को तृण (घास भूसादि) और ठंडा जल देना चाहिये। सर्व संसार की माता गौओं को जो मारते पीटते हैं, वे अवश्य रौरव नामक नरक में पड़ते हैं। पर्वत पर सर्दी से, ग्रीष्म ऋतु में धूप से तथा सिंह से डरी हुई और दुबली, दुखी गायें श्रद्धा से माता पिता की तरह पालनीय होती हैं। गौएँ सर्व जीवों में उत्तम, पवित्र और मंगलदायक रक्षणीय पात्र हैं। जहाँ गौएँ निर्भय होकर अपने समूह में श्वास लेती हैं, उस देश को (धन धान्यादि) सर्व प्रकार से सुशोभित करती हैं और उस (देश) के पापों को हरती हैं, अर्थात् जिस देश में गौएँ वध नहीं होती हैं, वही देश सदा उन्नतिशाली तथा निष्पाप है।

अतएव स्वदेश को निष्पाप और उन्नतिशाली बनाने के लिये भारतीय राजा महाराजा तथा सब प्रजाजनों को गोरक्षा रूपी महोत्सव कार्य में तन मन धन से भाग लेना चाहिये। इस समय भारतवर्ष के हरएक प्रान्त और नगर में तथा ग्राम ग्राम में गोशाला खोलने की तथा गोपाल विज्ञान की शिक्षा फैलाने की अत्यन्त आवश्यकता है। उस गोपाल विषयक ज्ञान के प्रचार से ही हम लोग गो वध बन्द करके गो कुल की उन्नति कर सकते हैं। गो कुल की उन्नति के लिये पाँच मार्ग-प्रशंसनीय और अनुकरणीय हैं यथाः—

(१) गो रक्षा कर गो वंश को जनता के लिये अधिक से अधिक उपयोगी बनाना।

(२) गोचर भूमि की वृद्धि करना।

(३) गो कुल की रक्षा और वृद्धि का रहस्य जनता को समझाने के लिये गोपाल साहित्य प्रस्तुत करना और उसका सुशिक्षित प्रचारकों द्वारा प्रचार करना।

(४) स्थान २ पर आदर्श गोशालाएँ खोल कर उनके द्वारा जनता को वह शिक्षा देना जिससे वह अपने गो धन को अधिक उपयोगी बना सकें।

(५) गोपालन विज्ञान की शिक्षा देने के लिये स्थान २ पर विद्यालय खोलना और उचित गोपालन की शिक्षा के प्रचारार्थ प्रचारक दल प्रस्तुत करना।

इति श्री स्वामी अचलराम विरचित हिन्दू धर्म रहस्यान्तर्गत गोरक्षा प्रकरण समाप्त।

हिन्दू धर्म—प्रचार।

आर्य्य *शास्त्रों में लिखा है कि धर्म की वृद्धि से प्रजा की वृद्धि और धर्म के ह्रास से प्रजा का नाश होता है। इसलिये धर्म को

---

* धर्मे वर्द्धति वर्द्धन्ति सर्वे भूतानि सर्वदा।
तस्मिन् ह्रसति हीयन्ते तस्माद् धर्मं न लोपयेत्॥
प्रभवार्ऽथं हि भूतानां धर्मः सृष्टः स्वयम्भुवा।
तस्माद् प्रवर्त्तयेद् धर्मं प्रजाऽनुग्रह कारणात्॥

लुप्त नहीं करना चाहिये। भूतों की पुष्टि के लिये ही परमात्मा ने धर्म का प्रकाश किया है। अतः प्रजानुग्रह हेतु हिन्दू राजाओं को अपने राज्य में धर्म का प्रचार करना चाहिये।

वर्त्तमान में वैदिक धर्म का प्रचार न होने ही से हिन्दू जाति का ह्रास होता जा रहा है। इस समय हिन्दू जाति की बड़ी शोचनीय दशा है। यदि यही दशा बनी रही तो सचमुच जाति का भविष्य अन्धकारमय होगा।

नई मनुष्य-गणना से पता चलता है कि—हिन्दुओं की संख्या प्रतिदिन घटती ही चली जाती है सन् १९११ की मर्दुम-शुमारी में हिन्दुओं की संख्या २१ करोड़ ७३ लाख ३७ हजार ९ सौ ४३ तेंतालीस थी परन्तु सन् १९२१ में वह घट कर २१, ६२, ६०, ६२०, रह गई। यानी दस वर्ष में १०, ७७, ३२३, हिन्दू घट गये। अन्य शब्दों में यह कह सकते हैं कि सन् १८८१ की सब से पहली मनुष्य गणना के समय भारत की सारी जन-संख्या में फ़ी सदी ७४ हिन्दू थे पर आज घट कर ६८ ही रह गये हैं।

दूसरी ओर मुसलमानों और ईसाइयों को देखिये तो बढ़ते ही चले जा रहे हैं। सन् १९११ में मुसलमानों की संख्या ६, ६६, ४७, २९९ थी परन्तु सन् १९२१ में वह बढ़ कर ६ करोड़ ८७ लाख ३५ हजार २ सौ ३३ तेंतीस हो गई। इसी प्रकार ईसाइयों की संख्या सन् १९११ में ३८ लाख ७६ हजार २ सौ ३ तीन थी परन्तु सन् १९२१ में वह बढ़ कर ४७, ५४, ०६४ हो गई। ये सब बढ़े हुये कौन हैं? हिन्दुओं ही के कटे हुए अंग है!

तात्पर्य—"मुसलमानों और ईसाइयों की उन्नति का मूल कारण उनके धर्म का प्रचार है। मुसलमानों के हजारों मुल्ला

मौलवी अपितु ७ सात करोड़ मुसलमान ही अपने धर्म प्रचार में संलग्न हैं।"

"इसी प्रकार ईसाइयों के हजारों कार्यकर्त्ता अर्थात् ७२०८ प्रचारक १८७७९ पादरी और ४८०४४ शिक्षक आदि सब ईसाई अपने धर्म का प्रचार कर रहे हैं। ग्रामों और नगरों में ही नहीं अपितु पहाड़ों में भी अनेक कष्ट सहकर भी ईसाई धर्म का प्रचार तथा विस्तार कर रहे हैं, इसीलिये ईसाई भी प्रति दिन बढ़ते ही चले जा रहे हैं।"

"हिन्दू जाति का ह्रास इस लिये हो रहा है कि हिन्दू धर्म के संत, महन्त, आचार्य्य, गुरु पंडित पांडे और पुजारी लाखों होने पर भी सनातन धर्म का प्रचार नहीं करते।" हमारे यहाँ प्रचार कार्य्य प्रायः साधु और ब्राह्मणों के ही जिम्मे था, इनका कर्त्तव्य था कि स्वयं अपने शास्त्रों का अध्ययन कर, उनसे पूर्ण धर्म ज्ञान प्राप्त करके जनता के कानों तक पहुँचाना। किन्तु अब साधु ब्राह्मणों का ज्ञान केवल "उदर निमित्त' रह गया। जनता चाहे रसातल को जाय, उनको परवाह नहीं। ये अपने स्वार्थ के बिना एक क़दम भी नहीं चलते। जहाँ पर इनका स्वार्थ सिद्ध होता है, वहाँ पर ही जाकर कथा, कीर्त्तन तथा उपदेश करना। और जहाँ पर स्वार्थ न हो वहाँ पर कुछ न करना। इस स्वार्थ ने ही हमारे देश, जाति और धर्म का सत्यानाश किया है।

"प्राचीनकाल में हमारे देश, जाति, तथा धर्म की उन्नति का भार प्रायः साधु ब्राह्मणों पर ही निर्भर था, परन्तु अब साधु ब्राह्मणों का भार देश और जाति पर आ गिरा।

तात्पर्य—भारत की जन संख्या में १ करोड़ ५० लाख के लगभग ब्राह्मण और ६० लाख के लगभग साधु संन्यासी हैं।

इनमें से कतिपय व्यापार, कृषि और नौकरी पेशा करके खाते हैं। प्राय: अधिकांश हिन्दू समाज पर ही गुलछर्रे उड़ाते हैं, परन्तु समाज का विशेष उपकार कुछ नहीं करते। यदि यह कुछ उपकार करते रहते तो आज हिन्दू समाज की ऐसी दुर्दशा न होती।

"बड़े खेद की बात है कि हम जिस समाज और देश में उत्पन्न हुए हैं, जिस समाज और देश में हमने शिक्षा तथा दीक्षा प्राप्त की है। जिस समाज और देश में हमारी स्थिर जीविका है, जिस समाज में हम गुरु बन कर पूजे जाते हैं। उस समाज की रक्षा और उन्नति न करना हमारे लिये कितना बड़ा पाप है"।

"मैं अपने साधु और ब्राह्मण भाइयों से क्षमा चाहता हूँ, उन पर आक्षेप करना नहीं चाहता, किन्तु उनके समक्ष हिन्दू जाति का भीषण ह्रास होता हुआ देख कर कुछ कड़े शब्दों में अपील करता हूं। इस समय जाति की रक्षा और धर्म का उद्धार वे ही कर सकते हैं।"

साधु ब्राह्मणों के अग्रसर हुए बिना कुछ भी न होगा। हमारे धर्म पर जब कभी आघात पहुँचा है तब साधु-महात्मा और ऋषि-मुनियों ने ही उसकी रक्षा की है। इस बात का इतिहास साक्षी है।

"इस समय मुसलमान और ईसाई लोग अपने धर्म का प्रचार बड़े जोरशोर से कर रहे हैं अर्थात् सहस्रों लाखों* "हिन्दू"

*"१६ मई १६२५के रिसाला दरवेश पत्र में लिखा था कि मुसलमानों की सब तब्लीगी अन्जुमों ने तीन साल के अन्दर एक लाख हिन्दुओं को मुसलमान किया।"

"तथा—मद्रास के लाट-पादरी लिखते हैं कि एक हफ्ते में दो हजार हिन्दुओं को ईसाई बनाते हैं। (मिलाप तथा भारतमित्र २३—७—२५)

मुसलमान और ईसाई बनाये जा रहे हैं। यदि इसका शीघ्र ही प्रतिकार न किया जायगा तो निःसंदेह थोड़े ही काल में आर्य्य जाति का अस्तित्व इस संसार से विलीन हुए बिना न रहेगा और उसका सारा उत्तरदायित्व साधु और ब्राह्मणों पर होगा।

अतएव साधु ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है—कि जाति की रक्षा और धर्मोद्धार के लिये कटिबद्ध हो जायें।

"इस घोर संकटापन्न दीन-हीन और कर्त्तव्य पराङ्मुख हिन्दू जाति के गुरुजनों को चुपचाप (अकर्मण्य) बैठे रहना उचित नहीं है। उन्हें प्रत्येक ग्राम, तहसील, जिला तथा प्रान्त में अपना कार्य क्षेत्र बाँट लेना चाहिये। वे सम्बद्ध न होकर व्यक्तिगत रूप से भी बहुत कुछ हिन्दू धर्म का प्रचार कर सकते हैं।"

अतः हर एक साधु ब्राह्मण को नगर २ और ग्राम २ में जाकर सनातन धर्म का प्रचार करना चाहिये और अनाथों की, विधवाओं की, मंदिरों की और लोक माता गौवों की रक्षा करनी चाहिये तथा आततायियों को दबाना और दण्ड देना चाहिये। "अग्नि लगाने वाला, विष खिलाने वाला, शस्त्र लेके मारने वाला, धन, स्त्री और क्षेत्र को हरने वाला ये छः* आततायी हैं। इनके मारने का पाप मारने वाले को नहीं लगता। अतः इन्हें मारना मनुष्य का धर्म है। नीति कहती है कि-जो मनुष्य अपने शत्रुओं के दबाने, धमकाने, मारने पीटने और कुचलने द्वारा हुए

* अग्निदोगरदश्चैव शस्त्रपाणिः धनापहः।
क्षेत्रदार हरश्चैतान् षड्विद्या दाततायिनः॥ (शु० नी०)
नात तायि वधे दोषो हंतुर्भवति कश्चन। मनु०

अपमान को सहता, सुनता हुआ भी सुस्त बैठा रहे और चूं भी न करे उससे तो वह जड़ धूलि बहुत अच्छी है कि जो लोगों के दवाई जाने पर उड़ कर दबाने वाले के शिर* पर चढ़ती है।

तात्पर्य—नीति शास्त्र के मुख्य दो उद्देश्य हैं। एक आत्मोदय और दूसरा पर ज्यानि (पर हानि) इसी दो प्रकार की नीति को लेकर बड़े २ नीतिवेत्ता लम्बे चौड़े व्याख्यान करते हैं। इन दोनों में आत्मोदय को सभी नीति वेत्ता मुख्य इसलिये मानते हैं कि यह अंश सर्वथा निर्विवाद है, पर हानि में अनेक प्रकार का विवाद होता है। अतः प्रत्येक मनुष्य को आत्मोदय करना चाहिये। आत्मोदय नाम अपना सब प्रकार का सुधार, अपनी सब प्रकार की उन्नति, स्वयं अपनी रक्षा वा अपने कार्यों का प्रबन्ध करने योग्य बनना, अपने घरेलू झगड़ों का फैसला स्वयं करने की योग्यता प्राप्त कर लेना। अपने घर, कुटुम्ब, जाति, ग्राम, नगर, प्रान्त और देश की सब आवश्यकताओं का प्रबन्ध कर सकना यही† आत्मोदय है। जब तक आत्मोदय नहीं होता तब तक परहानि की चेष्टा सर्वथा निष्फल है। सूर्य नारायण में जो प्रबल प्रकाश है वही आत्मोदय है। सूर्योदय होते ही उद्योग किये बिना ही अन्धकार का अभाव हो जाता है। और यह भी निश्चय है कि आत्मोदय के बिना परहानि हो भी नहीं सकती तथा आत्मोदय होने पर विपक्ष का स्वयं नाश हो जाता है इसलिये आत्मोदय रूप नीति का अवलम्बन प्रचारकों को

---

* पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधि रोहति।
स्वस्था देवाऽपमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः॥ (न्या० म०)

† आत्मोदयः परज्यानि द्वयं नीति रितीयती।
तदूरी कृत्य कृति भिर्वाच स्पत्यं प्रतायते॥ (माघे)

करना उचित है । आत्मोदय के लिये सब से बढ़ कर आवश्यकता है धार्मिक शिक्षा की अर्थात् प्रतिभा, एकता, पवित्रता, दृढ़ता, निर्भयता, अहिंसा, सचाई, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, व्यायाम और धैर्य का प्रत्येक हिन्दू को अवलम्बन तथा प्रचार करना चाहिये और साथ ही अछूतों का उद्धार भी करना चाहिये।

अछूतोद्धार ।

"किरात हूणांध्र पुलिन्द पुक्कसा
आभीर कङ्का यवनाः खसादयः ।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रया श्रयाः
शुद्धयन्ति तस्मै प्रभविष्णवेनमः ॥"

(भा० २-४-१८)

भीलादि, वायव्य देश के ताम्र मुख पुरुष तैलङ्गों में आन्ध्र जाति के मनुष्य, पुलिन्द और पुल्कस आदि चाण्डाल जातियों के मनुष्य, आभीर, कङ्क, यवन और खस इत्यादि यवन जातियों में के मनुष्य, और जो अन्य भी पाप जातियों के मनुष्य हैं, वह देखो ! जिनके भक्तों के आश्रय से शुद्ध हो जाते हैं, तिन महा प्रभावशाली ईश्वर को मेरा प्रणाम है ।

"भारतवर्ष में २२ करोड़ हिन्दुओं में तीसरा हिस्सा अछूत हैं, अर्थात् ७ करोड़ के लगभग अछूत हिन्दू हैं । यह संख्या सर्विया की आबादी के 'बीस गुने से अधिक, मांटीनिग्रो की आबादी का सौगुना, स्विटजरलैंड का सोलह गुना, बेलजियम का आठ गुना, जापान का ड्योढ़ा, और ग्रेटब्रिटेन की आबादी से भी कई करोड़ अधिक हैं ।

ये सात करोड़ हिन्दू-हिन्दू समाज में पतित समझे जाते हैं, कुलाभिमानी हिन्दू उनके साथ पशुता का व्यवहार करते हैं अर्थात् उन्हें कुओं पर पानी नहीं भरने देते, मन्दिरों में आने नहीं देते और पाठशाला में इनके बच्चों को पढ़ने नहीं देते अर्थात् इनका स्पर्श तक नहीं करते। तब बेचारे हिन्दू धर्म से तंग आकर विधर्मी होने के लिये तैयार होते हैं।

जो जाति अपने इतने पुत्रों के साथ दुर्व्यवहार कर रही है, उसका भविष्य न जाने क्या होगा? परमात्मन्! हमको सद्बुद्धि दे। हमारे जैसे हाड़-मांस और हाथ पैर वाले शिखाधारी भाइयों के स्पर्श से हम अपवित्र हो जाते हैं। मद्य मांस भक्षण से और पर स्त्री सेवन आदि दुराचार कर्मों से हम अपवित्र नहीं होते, पशु पक्षी, कुत्ते बिल्ली और गधे घोड़े आदि जानवरों के स्पर्श से भी हम अपवित्र नहीं होते, मुसलमानों के बदने ढोने से, तथा स्टेशनों से साहब लोगों के बीफ और हैम के पार्सल छुड़ाकर अपने पीत यज्ञोपवीत के ऊपर रख कर लाने से भी हम अधर्मी नहीं होते। परन्तु अछूत हिन्दू की छांहीं पड़ते ही हमारा धर्म छूमन्तर हो जाता है यह कैसी आश्चर्य की बात है!

सब से बढ़कर आश्चर्य की बात तो यह है कि अछूत हिन्दू ज्योंही मुसलमान या ईसाई हो जाता है, तो उसकी सब छूत मिट जाती है। फिर वह हमारे कुओं पर पानी भर सकता है, मन्दिर में भी आ सकता है। इससे साफ़ मालूम होता है कि हम अपने अछूत हिन्दू भाइयों को ईसाई या मुसलमान होने के लिये विवश करते हैं।

तात्पर्य—वर्त्तमान में हमारी अस्पृश्यता धर्म शास्त्रानुसार विज्ञान मूलक नहीं किन्तु रूढ़ि मूलक है। यदि शास्त्रानुसार

होती तो वृहस्पति महाराज की उस आज्ञा का प्रचार करते कि, जिससे अनेक स्थानों एवं अवसरों की अस्पृश्यता हट जाती। वृहस्पति जी लिखते हैं कि *"तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देश विलवे। नगर ग्राम दाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति ॥"* तीर्थों में, विवाह में, सफ़र में, लड़ाई में, देश पर आये हुए सङ्कट काल में, नगर तथा ग्राम में अग्नि लग जाने पर स्पर्शास्पर्श का दोष नहीं है। यदि हम श्रीमद्भगवद्गीता की नीचे लिखी आज्ञा का प्रचार करते तो अस्पृश्यता को देश निकाला ही हो जाता। भगवान् कहते हैं कि *"विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैवश्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥"* विद्या-विनय युक्त ब्राह्मण को, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल को जो एक बराबर देखते हैं, वे ही पण्डित समदर्शी हैं। तात्पर्य-भारतवर्ष के सिवाय समस्त संसार के और किसी भी देश में छूताछूत के विचार नहीं पाये जाते और भारतवर्ष में भी ईसाइयों, मुसलमानों, पारसियों, सिक्खों, बौद्धों, आर्य्य समाजियों, ब्रह्म तथा प्रार्थना समाजियों और कई पन्थों में नहीं पाये जाते। किन्तु केवल रूढ़ि के भक्त कतिपय हमारे सनातनधर्माडम्बरी भाइयों में ही पाये जाते हैं। इस अयोग्य छूताछूत ने ही बृहत् आर्य्य जाति को संकुचित बनाकर विराट् सनातन धर्म को परिमित किया है। "सनातन धर्म की प्रभुता और महत्त्व तो यह था कि भगवान् रामकृष्ण का नाम लेते ही उनकी शरण में आते ही पतित से पतित मनुष्य परम पवित्र माना जाता था यथा:—

"श्वपच शवर खल यवन जड़, पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥"

पर आज हमारे धर्म के ठेकेदारों की कृपा से भगवान् राम-कृष्ण की शक्ति, हज़रत मोहम्मद और मसीह से कम होगई है। मोहम्मद साहब और ईसामसीह की ताक़त तो यह है कि उनका नाम लेते ही उनकी शरण में जाते ही नीच से नीच कौम का मनुष्य भी सर्व श्रेष्ठ ईसाई या मुसलमान हो सकता है।

किन्तु हमारे धर्म की दुहाई देने वालों की कृपा से यदि कोई हिन्दू भी प्रमाद से या अन्य किसी कारण से ईसाई या मुसलमान होगया हो और वह पुनः राम-कृष्ण की शरण में आने पर भी हिन्दू नहीं हो सकता, स्वर्ग पहुँचाना तो दूर रहा। उसे हिन्दू समाज में भी स्थान नहीं मिलता। वेद भगवान तो कहते हैं कि—

समानी प्रपासह वो अन्न भागः समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि।
सम्यं चो अग्नि सपर्यत आरानाभि मिवाऽभितः॥

(अथर्ववेद ३-३०-६)

हे मनुष्यो! तुम्हारे पानी पीने की और भोजन करने की जगह एक ही रहे, मैंने तुम सब लोगों को एक ही धुरे में जोत दिया है, जिस प्रकार चक्र की नाभी में आरे बैठे रहते हैं, उसी प्रकार तुम भी इकट्ठे होकर अग्नि में हवन करो और परमात्मा की उपासना करो।

तात्पर्य यह है कि वैदिक धर्म किसी एक मनुष्य और जाति की जागीर नहीं है। यह तो सब मनुष्यों का सामान्य पुरातन धर्म है। "सृष्टिकाल में परमेश्वर ने सब मनुष्यों की एक आर्य जाति और उसके कल्याणार्थ सनातन धर्म को ही निर्माण किया था। प्राचीनकाल में मनुष्यमात्र इस धर्म के उपासक थे। परन्तु समय के फेर से ज्यों ज्यों इसका प्रचार कम होता गया त्यों त्यों,

इस संसार में अनेक जातियां और अनेक उपधर्म प्रचलित होते गये।

इस समय अन्यान्य देशों को छोड़कर केवल भारतवर्ष में मानव सृष्टि की १८,००० जातियां और २३०० फिरके (धर्म-मत) या टुकड़े हैं। ये सब हिन्दू जाति और सनातन धर्म के उपाङ्ग मात्र हैं। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि आर्य्य धर्म या हिन्दू धर्म के आभास मात्र हैं। वर्त्तमान में हिन्दू धर्म के मुख्य ाङ्ग या सम्प्रदाय-बौद्ध, जैन, सिक्ख, सनातन, आर्य समाज, ब्राह्म समाज, ये छः हैं। मरदुमशुमारी की रिपोर्ट में सरकार ने सिक्खों,बौद्धों और जैनों को हिन्दुओं में सम्मिलित नहीं किया है। बहुतों की सम्मति में यह ठीक भी है। परन्तु अभी काशी में हिन्दू महासभा का जो विशाल अधिवेशन हुआ था, उसमें कुछ इन लोगों के भी प्रतिनिधि आये थे। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु अनागरिक धर्मपाल ने महासभा के मंच पर खड़े होकर उच्चस्वर से घोषणा की थी कि बौद्ध भी हिन्दू ही हैं।

महासभा में इस बात पर विचार हुआ था कि "हिन्दू" शब्द की क्या व्याख्या की जाय, किस-किस मत को हिन्दू धर्म का अङ्ग माना जाय। अंत को यही निर्णय हुआ कि जिन-जिन धर्मों, मतो या सम्प्रदायों की उत्पत्ति भारतवर्ष में हुई है, उन सभी को हिन्दू-धर्म (अर्थात् आर्य-धर्म) का अङ्ग माना जाय। इस व्याख्या के अनुसार जैन, बौद्ध, सिक्ख भी हिन्दू धर्म के ही अङ्ग हैं।"

"अतः इन सब हिन्दू सम्प्रदायों का कर्त्तव्य है कि अपने समाज की उन्नति और उसे सुसंगठित करने के लिये परस्पर प्रेम, एकता और सहानुभूति रखते हुए अछूतों का उद्धार

करना चाहिये। इस समय अछूतों के लिये हिन्दू समाज में जो रुकावटें हैं उनको शीघ्र ही दूर करने का प्रचार करना, हिन्दू मात्र का कर्त्तव्य है।

(१) प्रथम रुकावट तो यह है कि—जो अछूतों के साथ मालाबार में छाया दोष और दृष्टि दोष तथा भारत में जहाँ कहीं स्पर्श दोष माना जाता है उसको दूर कर दिया जाय, क्योंकि मनुष्य मात्र में कोई अस्पृश्य नहीं है, इतना कह देना उचित है अस्पृश्य-स्पृश्य के यह अर्थ नहीं कि सबके साथ खा पी लेना और अपवित्रता का विचार तक न करना। अभिप्राय केवल इतना है कि जिसका शरीर और वस्त्र साफ पवित्र हों उसके "छू" जाने से हमको घृणा न करनी चाहिये, चाहे वह किसी जाति का हो।

(२) दूसरी पानी की रुकावट भी अछूतों की दूर होनी चाहिये कि जिस वापी, कूप, तड़ाग में मुसलमान और ईसाइयों के साथ हिन्दू पानी भरते हैं, उन जलाशयों में दलितों को भी पानी भरने देना चाहिये क्योंकि जिन जलाशयों में गधे, घोड़े, कुत्ते, बिल्ली और कौवे आदि जानवर तक भी अपवित्र मुँह से पानी पीते हैं तब बेचारे अछूतों ने क्या अपराध किया है जो उन्हें पानी न भरने दिया जाय। ईश्वरदत्त पानी पर प्राणी मात्र का पूर्ण समानाधिकार होना चाहिये।

(३) तीसरी अड़चन अछूतों को यह है कि उनके बच्चे सर्वसाधारण शिक्षालयों में अन्य जाति के बच्चों के साथ मिल कर पढ़ नहीं सकते। यह भी रुकावट उनकी दूर होनी चाहिये। जब स्कूलों और कालेजों में ब्राह्मणों के लड़कों के साथ सटकर

गोमांस भक्षियों के बालक बैठ सकते हैं तब गोभक्त शिखाधारी अछूत हिन्दुओं के बच्चे क्यों नहीं पढ़ सकते।

बड़ौदा, मैसोर और ट्रावनकोर की हिन्दू रियासतों ने तो यह भेद भाव हटा दिया है, तथा बृटिश गवर्नमेंएट ने भी इनके बच्चों की भरती की खुली आज्ञा दे दी है। अतः हिन्दू समाज को भी विराट् रूप से यह आज्ञा दे देनी चाहिये।

(४) चौथी धार्मिक रुकावट भी दलितों की दूर होनी चाहिये। हिन्दू समाज में बहुतसे सम्प्रदाय हैं। सब अपने २ मतानुसार ईश्वर का आराधन करते हैं। अछूतों में भी भिन्न २ धर्म के मनुष्य हैं। अत: जो जिस धर्म का अनुयायी हो, उसको उस धर्म सम्प्रदाय के देव मंदिरों में जाने की खुली छुट्टी होनी चाहिये। यदि कोई जैन धर्म को मानने वाला हो तो जैन मंदिरों में उसको देव पूजा का वैसा ही अधिकार होना चाहिये जैसा कि इन्दौर के सेठ हुकुमचन्द जी का है। यदि किसी अछूत की खालसा पन्थ में श्रद्धा हो तो उसको सिक्ख गुरुद्वारों में सब के साथ मिल कर अर्दास करने का अधिकार होना चाहिये।

यदि किसी भाई की आर्य्य समाज या ब्रह्म समाज में श्रद्धा हो तो उसको आर्य्य समाज तथा ब्रह्म समाज के मंदिरों में प्रार्थना करने का समानाधिकार होना चाहिये। मैं जानता हूँ कि आर्य समाज और ब्रह्म समाज तथा खालसा पन्थ के संशोधक लोग दलितों के साथ ऐसा ही व्यवहार करते हैं। परन्तु जहाँ कहीं उनमें भी त्रुटी हो तो वह दूर हो जानी चाहिये। ऐसे ही जिस देवता का वह उपासक हो उस देवता का मंदिर हमारे सनातन धर्मी भाइयों की ओर से भी उन के लिये खुल जाने चाहियें।

तात्पर्य यह है कि—सब धर्म स्थान ईश्वर के घर हैं, ईश्वर के घर में सब का समानाधिकार होना चाहिये। महात्माओं का कहना है कि:—

"हरि को भजे सो हरि का होय। ऊँच नीच अंतर नहीं कोय॥"
जाति पांति कुल रीझे नाहिं, नहीं रीझे वो चतुराई।
हरि तो भक्ति के वश भाई। हरि तो भक्ति के वश भाई॥
चतुराई चुल्हे पड़ी, भट्टी पड़यो आचार।
तुलसी हरि की भक्ति बिनु, चारों वर्ण चमार॥

अतः ईश्वर दरबार में किसी एक मनुष्य और किसी खास जाति का इजारा (ठेका) नहीं हो सकता यह तो सब के लिये खुला दरवाजा है। चाहे किसी जाति का भक्त हो।

(ग़ज़ल खम्माच ताल कहरवा)

करो हरि भक्ति ये खुल्ला बाजारा ।
जाति वर्ण न किसी का इजारा ॥ टेक॥
भिलनी वो व्याध की न देखी हरि जाति।
लगाये सीने से न पूँछा आचारा ॥ १ ॥ करो० ॥
हुए नीच जाति से प्रायः ऋषि जन ।
जिनका दुनियां में वो नाम *जहारा ॥ २ ॥ करो० ॥
व्यास वसिष्ठ नारदादि मुनीश्वर ।
हुए हरि भक्ति लाखों हजारा ॥ ३ ॥ करो० ॥
प्रभु प्रसन्न होता है केवल भक्ति से ।
अचलराम जाति न पांति विचारा ॥ ४ ॥ करो० ॥

---

* ऋष्य शृंगो मृगयः कौशिकः कुशात् जाम्बूको जम्बूकाद्वाल्मीको वल्मीकाद्व्यासः कैवर्त्त कन्यायां शशपृष्ठाद् गौतमः॥ वसिष्ठ उर्वश्याम् अगस्त्यः कलशे जात इति श्रुतिः॥

(गज़ल खम्माच ताल कहरवा)

विना प्रेम भक्ति के धूल जमारा।
झूठा दुनिया का वो शौच आचारा ॥ टेक ॥
बुगुला वो भक्ति करे सब कोई।
निष्कपट भक्ति न मन से विचारा ॥ १ ॥ विना० ॥
ऊपर से छूछा करे हद से जादा।
दिल में भरा जिनके मैल विकारा ॥ २ ॥ विना० ॥
अगर होय जाति वर्ण में जो ऊंचा।
विना प्रभु भक्ति के ढेढ़ चमारा ॥ ३ ॥ विना० ॥
रविदास कवीरा वो सदना कसाई।
अचलराम प्रभु को हुए अति प्यारा ॥ ४ ॥ विना० ॥

इति श्री स्वामी अचलराम विरचित हिन्दू धर्म रहस्यान्तर्गत
अछूतोद्धार प्रकरण समाप्त।

उपसंहार।

साधारण धर्म और विशेष रूप से दो प्रकार का यह सार्वभौमरूपी सनातन धर्म कहा गया है। उनमें से साधारण धर्म सर्व जीव हित तत्पर माना गया है। और अधिकार विशेष के केन्द्रों से युक्त जीवों को विशेष धर्म निश्चय ही परमहित सम्पादन करता है।

विशेष धर्म का स्वरूप अति ही विचित्र है जैसे आर्य जाति के वर्ण और आश्रम धर्म परम हितकारी कहे गये हैं, वैसे अनार्य

जाति के लिये वह उपयोगी नहीं हैं। इसका कारण यह है कि वर्णाश्रम धर्म विशेष धर्म है अर्थात् जिस जाति में सदाचार और वेद प्रामाण्य नहीं, उस जाति-को वर्णाश्रम रूप विशेष धर्म का अधिकार नहीं। "प्रवृत्ति रोधक वर्ण *धर्म और निवृत्ति पोषक आश्रमधर्म ये दोनों ही आर्य जाति को चिरकाल पर्यंत जीवित रख कर शंकरता दोष और पतन से बचाते हैं। "तपमूलक नारी† धर्म और यज्ञ मूलक पुरुष *धर्म ये दोनों ही विशेष धर्म हैं।

तथा प्रवृत्ति धर्म, निवृत्ति धर्म, राजधर्म, प्रजाधर्म, शाक्तधर्म शैवधर्म, वैष्णव धर्म और आपद्धर्म आदि ये सब विशेष धर्म के अन्तर्गत ही हैं।"

"वर्णाश्रमादि विशेष धर्मों के पालन से आर्य्य लोग क्रमशः अज्ञान भूमियों से बच कर ज्ञान भूमियों के ही पथिक बनते हैं और साधारण धर्म के मुख्य चौबीस अङ्ग सर्व प्राणी हितप्रद

---

* प्रवृत्ति रोधकोनूनं वर्ण धर्म्मो महर्षयः।
निवृत्तेः पोषक श्चास्ति धर्म आश्रम गोचरः॥
धर्म्मा वेता वुभावेव संजीव्य शाश्वतीः समाः।
आर्य्य जातिं सुरक्षेतां सांकर्य्यात्व पतनात्तथा॥

† नारी धर्म्मस्तपो मूलो नृधर्म्मो यज्ञ मूलकः।
एतौ द्वावपि वर्त्तेते धर्म्मों विप्राः! विशेषकौ॥
प्रवृत्ति धर्म एकोऽस्ति निवृत्ति धर्म इत्यपि।
राज धर्म्मः प्रजा धर्म्मः शाक्तः शैवश्च वैष्णवः॥
सौर्य्यो धर्म्मोऽपि भो विप्राः! आपद्धर्म्मा दयस्तथा।
एते विशेष धर्मस्य वियन्तेऽन्तर्गताः खलु॥

धी० गी० ४, ५७ से ६१

कहे गये हैं, क्योंकि संसार में रुचि विभिन्न हैं और सामर्थ्य भी विभिन्न हैं, इस कारण साधारण धर्म्म सर्व जीव हितकर कहा गया है अर्थात् इसमें आर्य अनार्य मनुष्य मात्र का अधिकार है। यदि २४ अङ्गों से पूर्ण धर्म के सर्वलोक हितकर स्वरूप को, धर्म जिज्ञासु जान जायँ तो वे उदार हृदय होकर सर्व प्राणियों के गुरु की पूज्य पदवी (ज्ञान) को प्राप्त होकर कृतकृत्य होते हैं। प्रत्येक युग में जितने धर्म मार्ग पैदा होंगे वे सब साधारण धर्म्म के इन २४ अङ्गों में से कुछ अङ्गों का आश्रय लेकर ही कृतकृत्यता को प्राप्त होंगे। और अब तक संसार में जितने धर्म मार्ग उत्पन्न हुए हैं वे सभी सनातन धर्म के अनुग्रह से ही कृतार्थता को प्राप्त हुए हैं। यही सनातन धर्म का पितृभाव है।

जो धर्म अन्य धर्मों से द्वेष न करे अथवा अन्य धर्मों को कभी बाधा न दे और सब को यथाधिकार उभय विधि अभ्युदय प्रदान करे और सब को निःश्रेयस का मार्ग बतावे, वही सनातन-धर्म है। यथा:—

"यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्म्मः ॥"

(वै, द० २)

अर्थात् जिसके द्वारा इह लोक तथा परलोक में उन्नति और अन्त में मोक्ष की प्राप्ति हो वही सनातन धर्म है। इति।

धार्मिक ग्रन्थों की सूची।

प्रश्न—हिन्दू धर्म के प्रतिपादक सब शास्त्र कितने हैं ?

उ०—चार वेद, छः वेदाङ्ग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्म शास्त्र, ये चौदह* विद्या और धर्म के स्थान हैं। इन चतुर्दश प्रकार की विद्याओं से सनातन धर्म जाना जाता है। इन्हीं चतुर्दश विद्याओं के अन्तर्गत समस्त शास्त्र आजाते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। चार वेदों की ११३१ शाखा, प्रत्येक शाखा के साथ ११३१ ब्राह्मण ग्रन्थ, कल्प वेदाङ्ग के ११३१ श्रौत सूत्र, तथा ११३१ गृह्य सूत्र ४ वेदों की चार शिक्षा, एक व्याकरण, एक निरुक्त, एक छन्द, एक ज्योतिष, वीस २० धर्म शास्त्र (मनु आदि स्मृति) दो मीमांसा (पूर्व और उत्तर मीमांसा) ४ न्याय (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग) ये चारों एक एक प्रकार से अपने अपने उद्दिष्ट विषय का न्याय नाम निर्णय (फैसला) करने वाले हैं २० इतिहास-पुराण ये सब कम से कम सनातन धर्म तथा विद्या के भण्डार ४५७८ चार हजार पांच सौ अठहत्तर विद्या धर्म की पुस्तकें पूर्वकाल में विद्यमान थीं। इनसे भिन्न उपवेद तथा उप पुराणादि अन्य भी ग्रंथ बाकी रहते हैं। उप वेदों का वेदों में और उप पुराणों का पुराणों में अन्तर्भाव हो सकेगा। परन्तु मुख्य कर यही चौदह प्रकार की विद्या मनुष्य को संसार समुद्र से पार करने वाली हैं। उपनिषद् पुस्तक, शाखा तथा ब्राह्मण ग्रंथों के

---

*पुराण न्याय मीमांसा धर्म शास्त्रांगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ (याज्ञ० अ० १-३)

अन्तर्गत आजाने से पृथक् नहीं गिने गये हैं तथा उस २ वेद के उपनिषद् भी उसी २ वेद के अन्तर्गत माने जाते हैं।

प्रश्न—इन चौदह विद्याओं का आदि रचयिता कौन है ?

उ०—सब विद्याओं का आदि कर्त्ता जगन्नियन्ता परमेश्वर है। जैसे कि श्रुति* में लिखा है कि "ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, मन्त्र, सूत्र भाष्य व्याख्यान इत्यादि सब शास्त्र ईश्वर के श्वास हैं, अर्थात् सब शास्त्रों का आदि कारण ईश्वर है ("शास्त्र योनित्वात्" । वेदान्त दर्शन ।)

वेद-विषय ।

प्रश्न—वेद कितने और कौन कौन है ?

उ०—वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ।

प्रश्न—वेद कब बनाये गये और किसके द्वारा प्रकट हुए ?

उ०—वेद अनादि अपौरुषेय हैं—ब्रह्माजी द्वारा प्रकट हुए और ऋषियों द्वारा प्रचरित हुए हैं।

प्रश्न—वेद में क्या विषय है ?

---

* अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराण विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि ॥

(बृ० उ० ४-५-११)

उ०—वेद सकल ज्ञान का भण्डार है। सब शास्त्र वेद से ही उत्पन्न हुए हैं। मुख्य कर वेद में तीन विषय हैं यथा-कर्म, उपासना और ज्ञान वेदत्रयी रूप से* प्रसिद्ध हैं।

उपवेद-विषय ।

प्रश्न—उपवेद कितने और कौन २ हैं ?

उ०—उपवेद चार हैं-आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद और अर्थवेद।

प्र०—आयुर्वेद के रचयिता कौन हैं और इसका विषय क्या है ?

उ०—आयुर्वेद के प्रकट कर्त्ता ब्रह्मा प्रजापति अश्विनीकुमार, धन्वंतरि आदि हैं और उसमें शारीरिक चिकित्सादि (स्वास्थ्य रक्षा) विषय है।

प्र०—आयुर्वेद सम्बन्धी कौन २ ग्रंथ हैं।

उ०—चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, हारीत इत्यादि ।

प्रश्न—धनुर्वेद के कर्त्ता कौन हैं और इसमें क्या विषय है ?

उ०—धनुर्वेद के रचयिता विश्वामित्रादि हैं और उसमें मुक्त (चक्रादि) अमुक्त (खड्गादि) मुक्तामुक्त (बरछी आदि) और यंत्र मुक्त (सर गोली आदि) ये चार प्रकार की आयुधरूपी विद्या का विषय है।

प्र०—गांधर्व वेद के रचयिता कौन हैं, और इसमें क्या विषय है ?

उ०—गांधर्व वेद के प्रकट कर्त्ता भरत, नारदादि हैं और इसमें स्वर, ताल, वाद्य, मूर्छनादि (गान) विद्या का विषय है।

---

*उपास्ति ज्ञान कर्माख्यै त्रिकाण्डैर्विश्रुताश्रुतिः ॥ (शगी० ४-५४)

प्रश्न—अर्थ वेद किसने प्रकट किया है ?

उ०—अर्थवेद के रचयिता विश्वकर्मादि हैं।

प्रश्न—अर्थवेद सम्बन्धी कौन २ शास्त्र हैं और उनमें क्या २ विषय है ?

उ०—अर्थवेद सम्बन्धी अनेक शास्त्र हैं यथा—नीति शास्त्र, अश्व शास्त्र, शिल्प शास्त्र, सूप शास्त्र इत्यादि हैं और इनमें धनोपार्जनादि विषय हैं।

वेदांग-विषय।

प्रश्न—वेदाङ्ग कितने और कौन २ हैं ?

उ०—वेदाङ्ग* छः हैं-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष।

प्रश्न—शिक्षा में क्या विषय है और किसने बनाया ?

उ०—इसमें वर्णोच्चारणादि अर्थात् उदात्त (उच्च स्वर) अनुदात्त (नीच-स्वर) स्वरित (समान-स्वर) उच्चारणादि ज्ञान का विषय है और कर्त्ता पाणिन्यादि मुनि हैं।

प्रश्न—कल्प में क्या विषय है और किसने प्रकट किया है ?

उ०—इसमें यज्ञ विषय है और प्रकट कर्त्ता कात्यायन, आश्वलायनादि ऋषि हैं।

---

*छन्दः पादौतु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्॥

प्रश्न—व्याकरण शास्त्र में क्या विषय है और उसका प्रकट कर्त्ता कौन है?

उ०—इसमें शब्द विचार विषय (अर्थात् वेद के शब्दों की शुद्धता का ज्ञान) है और कर्त्ता पाणिन्यादि हैं।

प्रश्न—निरुक्त में क्या विषय है और किसने बनाया?

उ०—इसमें वैदिक शब्दों की निरुक्ति (अर्थात् वेद के मन्त्रों में अप्रसिद्ध पदों के अर्थ का बोध) विषय है और यास्कादि ऋषि कर्त्ता हैं।

प्रश्न—छन्द में क्या विषय है और किसने बनाया?

उ०—इसमें वैदिक तथा लौकिक छन्दों के जानने की रीति है और पिङ्गलाचार्य आदि ऋषियों ने प्रकट किया है।

प्रश्न—ज्योतिष में क्या विषय है और किसने बनाया।

उ०—ज्योतिष शास्त्र में गणित और फलित दो विषय हैं अर्कांश पुरुष तथा मय आदि कर्त्ता हैं।

(वेद शाखा-विषय)

प्रश्न—वेद की कुल कितनी शाखाएँ हैं?

उ०—ग्यारह सौ इकत्तीस कुल शाखा हैं।

प्रश्न—कौन २ वेद की कितनी २ शाखाएँ हैं?

उ०—ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० अथर्ववेद की ९ शाखाएँ हैं।

उपनिषद्-विषय।

प्रश्न—उपनिषद् कितने और कौन २ हैं?

उ०—उपनिषद् १०८ हैं ईश, केन, कठादि।

प्रश्न—उपनिषद् में क्या विषय है?

उ०—उपनिषदों में ब्रह्म विद्या अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मात्मा के ज्ञान का विषय है।

ब्राह्मण ग्रन्थ-विषय।

प्रश्न—ब्राह्मण ग्रन्थ कितने और कौन २ हैं?

उ०—ऐतरेय, शतपथ, तैत्तिरीय, ताण्डय, कौषीतकि आदि अनेक हैं।

प्रश्न—ब्राह्मण ग्रन्थों में क्या विषय है और किसने बनाये?

उ०—यज्ञादि विषय और अपौरुषेय (ईश्वर निःश्वसित) हैं।

स्मृति-विषय।

प्रश्न—स्मृति कितनी और कौन २ हैं तथा इनके कर्त्ता कौन हैं?

उ०—स्मृति २० हैं मनु याज्ञवल्क्य अत्रि-आदि, उन उन स्मृतियों के नाम धारी ऋषियों ने बनाई हैं जैसे मनुस्मृति मनु महाराज ने, अत्रि स्मृति अत्रि ऋषि ने बनाई है।

प्रश्न—स्मृतियों में क्या विषय है और मुख्य कौन स्मृति है?

उ०—स्मृतियों में धर्माधर्म का ज्ञान एवं वर्णाश्रम विज्ञान और लोक व्यवहार की व्यवस्था इत्यादि विषय, तथा मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य, पराशर, वसिष्ठ और गौतम ये सब में मुख्य हैं।

दर्शन शास्त्र-विषय।

प्रश्न—दर्शन शास्त्र कितने और कौन २ हैं ?

उ०—दर्शन शास्त्र छः हैं। मीमांसा, सांख्य, योग, वेदान्त, न्याय और वैशेषिक।

प्रश्न—मीमांसा में क्या विषय है और किसने बनाया ?

उ०—इसमें कर्म काण्ड विषय, जैमिनि आचार्य ने बनाया है ?

प्रश्न—सांख्य में क्या विषय और किसने बनाया ?

उ०—इसमें प्रकृति पुरुष का भेद विषय है और कपिल देवजी ने बनाया।

प्रश्न—योग में क्या विषय है और किसने बनाया ?

उ०—इसमें योग क्रिया विषय है और पतञ्जलि मुनि ने बनाया।

प्रश्न—वेदान्त में क्या विषय है और किसने बनाया ?

उ०—इसमें जीव ब्रह्म ऐक्य विषय है और श्री वेद व्यास जी ने बनाया।

प्रश्न—न्याय में क्या विषय है और किसने बनाया।

उ०—तत्वज्ञान विषय है और गौतम ने बनाया।

प्रश्न—वैशेषिक में क्या विषय है और किसने बनाया ?

उ०—इसमें निःश्रेयस विषय है और कणाद मुनि ने बनाया।

पुराण-विषय।

प्रश्न—पुराण कितने और किसने बनाये ?

उ०—पुराण १८ हैं (ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पु०, शिव पु०, लिङ्ग पु०, गर्ग पु०, नारद पु०, श्रीमद्भागवत, अग्नि पु०, स्कन्द पु०, भविष्य पु०, ब्रह्मवैवर्त्त पु०, वैवस्वत पु०, मार्कण्डेय पु०, वामन पु० वाराह पु०, मत्स्य पु०, कूर्म पु०) श्री वेद व्यास भगवान् ने बनाये हैं।

प्रश्न—पुराणों में क्या २ विषय और मुख्य कौन पुराण हैं।

उ०—मानसिक और मैथुनिक सृष्टि-रचना उत्पत्ति, प्रलय तथा निराकार साकार ईश्वर विषय, ईश्वरावतार मूर्त्ति पूजा पातिव्रत्य धर्म नित्य कर्मादि इत्यादि विषय हैं। और श्री मद्भागवत पुराण मुख्य है।

इतिहास-विषय।

प्रश्न—इतिहास कितने और कौन २ हैं?

उ०—महाभारत और वाल्मीकीय रामायण, यह दो हैं।

प्रश्न—महाभारत में क्या लिखा है और किसने बनाया?

उ०—महाभारत में सृष्टि रचना से लेकर बड़े २ नामधारी, तपधारी, बलधारी, युद्धकारी, यती सती शूरमाओं का इतिहास वर्णन है। विशेष कर कौरवों की क्रूरता, लम्पटता, हीनता का और पांडवों के कर्म धर्म ज्ञान, ध्यान, वीरता धीरता आदि अनेक गुणों का वर्णन और तत्काल फल का लेख भी है, वेद व्यास भगवान् ने बनाया।

प्रश्न—वाल्मीकीय रामायण में किसका इतिहास है और किसने बनाया?

उ०—इसमें श्री रामचन्द्र भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम का इतिहास है और श्री वाल्मीकि ऋषि ने श्री रामचन्द्र जी के जन्म के १०००० वर्ष पहिले बनाया तथा तुलसीदास की और अन्य सब रामायण वाल्मीकीय रामायण की छाया रूप होने से उसी के अन्तर्गत जानो।

प्रश्न—सब शास्त्रों के सारभूत शास्त्र कौन से हैं?

उ०—सब वेदादि शास्त्रों का सार यह हिन्दू-धर्म-रहस्य और श्री मद्भगवतद्गीता है। यथाः—

"यस्मात् धर्म मयी गीता सर्व ज्ञान प्रयोजिका।
सर्व शास्त्र मयी गीता तस्मात् गीता विशिष्यते॥"

जिससे गीता धर्म्म मयी अर्थात् सनातन धर्म के सर्व अङ्ग उपाङ्गों से पूर्ण एवं कर्तव्याकर्त्तव्य के उपदेशों से भरी हुई सर्व प्रकार के ज्ञानों में उपयोगी और सर्व शास्त्र मयी अर्थात् जिसमें सब शास्त्रों का सार भरा है, इस हेतु से गीता शास्त्र सर्वोत्तम है।

अतएव प्रत्येक हिन्दू सन्तान को गीता शास्त्र और हिन्दू धर्म रहस्य "पुस्तक" प्रति दिन पढ़नी चाहिये।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

श्रुति-सुधा

(हरिगीतिका)

कपि को नचाता नट तथा ही जो रहे जग को नचा,
जो पापियों का नाश करके धर्म को लेते बचा।
जिसने अकेले आप ही संसार त्रिगुणात्मक रचा,
उनको अशङ्क प्रणाम करता मुग्ध मन से शिर लचा ॥१॥

जिसने रचा संसार उसका ध्यान धरना चाहिये,
निर्मोह बनकर सर्वदा सुख से विचरना चाहिये।
नर-देह पाकर प्राणियों का दुःख हरना चाहिये,
दुष्कर्म तजकर शक्ति भर सत्कर्म करना चाहिये ॥२॥

आनन्द-दायक शान्ति का सु-वितान तनना चाहिये,
अधिकार पाकर मान पाकर नम्र बनना चाहिये।
विद्रोह रूपी शत्रु का मुख मोड़ देना चाहिये,
कुत्सित फुटैली फूट का शिर फोड़ देना चाहिये ॥३॥

उद्योग-द्वारा धर्म से ही धन कमाना चाहिये,
धन को कमा कर लोक के हित में लगाना चाहिये।
सत्कार्य में जो विघ्न हों वे सब हटाना चाहिये,
आनन्दमय आनन्द ही के गीत गाना चाहिये ॥४॥

गम्भीरता हृद्धाम में पर्याप्त रखना चाहिये,
मुख देख कर ही बुद्धि से मनको परखना चाहिये।
कुत्सित-बुरी जो बात हो वह त्याग देना चाहिये,
बकवाद तजकर सज्जनों में भाग लेना चाहिये ॥५॥

असमय समय को देखकर निज बात करना चाहिये,
अज्ञात हो जो बात उसको ज्ञात करना चाहिये ।
मुख से कहे जो बात वह करके दिखाना चाहिये,
समझा-बुझा कर दूसरों का भ्रम मिटाना चाहिये ॥६॥

गुरु की तथा सत्शास्त्र की निन्दा न सुनना चाहिये,
आपत्ति से भयभीत होकर शिर न धुनना चाहिये ।
क्या सार है संसार का ? यह नित्य गुनना चाहिये,
गत वस्तु के हित शोच कर मन में न घुनना चाहिये ॥७॥

दारिद्र रूपी कोट से बाहर निकलना चाहिये,
चीत्कार सुनकर दीन की, घृत सम पिघलना चाहिये ।
समयानुसार सदैव अपनी गति बदलना चाहिये,
यदि मूर्खता से गिर रहे हों तो सँभलना चाहिये ॥८॥

विश्वास देकर के कभी धोखा न देना चाहिये,
लोकोपकारी कार्य कर बदला न लेना चाहिये ।
उपदेश सुनकर के उसे समुचित समझना चाहिये,
यदि दुर्गुणों में फंस गये हों तो संभलना चाहिये ॥९॥

परिणाम सोच विचार करके कार्य करना चाहिये,
सन्मार्ग में चलते हुए किञ्चित् न डरना चाहिये ।
अन्याय होते देख कर चुपके न रहना चाहिये,
जो बात कहने योग्य हो सर्वत्र कहना चाहिये ॥१०॥

विद्या, कला, विज्ञान से परिपूर्ण होना चाहिये,
पेटार्थ ही भ्रमते हुए जीवन न खोना चाहिये ।
अपकीर्त्ति-मल को कीर्त्ति जल से खूब धोना चाहिये,
निर्द्वन्द्व होकर सत्य सुख की नींद सोना चाहिये ॥११॥

आपत्ति में भी धर्म को समुचित बचाना चाहिये,
तन मन तथा धन वार कर प्रण को निभाना चाहिये ।
जो हट रहे पीछे उन्हें आगे बढ़ाना चाहिये,
जिनमें परस्पर द्वेष हो उनको मिलाना चाहिये ॥१२॥

जितना बनें दुष्कर्मियों से दूर रहना चाहिये,
निष्काम होकर शान्ति से भरपूर रहना चाहिये ।
निर्भीक, विश्रुत वीर बनकर अग्र बढ़ना चाहिये,
उठकर स्वतः अवनत-दशा से उच्च चढ़ना चाहिये ॥१३॥

करना जिसे उस बात का प्रण ठान लेना चाहिये,
यदि बाल भी हित की कहे तो मान लेना चाहिये ।
श्रुति-शास्त्र के आदेश के अनुसार चलना चाहिये,
कल्याण कारक धर्म के पथ से न टलना चाहिये ॥१४॥

अन्तःकरण निर्मल तथा निर्दोष लखना चाहिये,
आजन्म अथवा आमरण अघ को न रखना चाहिये ।
हरि-रूप निधि में बिन्दुवत् सानन्द मिलना चाहिये,
अपने अटल उद्देश से किंचित न हिलना चाहिये ॥१५॥

जो कार्य करना इष्ट हो वह शीघ्र करना चाहिये,
दुःखद विषय के पाश में फँस कर न मरना चाहिये ।
मन, कर्म, वचन से दूसरों को दुख न देना चाहिये,
असहाय पुरुषों की सदय बन नाव खेना चाहिये ॥१६॥

अज्ञानियों की मोह-निद्रा भंग करना चाहिये,
विद्वान् बनने के लिये सत्संग करना चाहिये ।
यश प्राप्ति के हित, लोक-हित हर वक्त करना चाहिये,
जितने सु-गुण हों आप में सब व्यक्त करना चाहिये॥१७॥

कृत कृत्य होने के लिये दृढ़ जड़ पकड़ना चाहिये,
सम्वाद करते में किसी से लड़ न पड़ना चाहिये ।
हरि-नाम का साहाय्य ले भव-सिन्धु तरना चाहिये,
झरना यथा झरता तथा गुण-वारि झरना चाहिये॥१८॥

परस्वार्थ के हित धीर बनकर दुःख सहना चाहिये,
उद्भ्रान्त के अपशब्द सुनकर शान्त रहना चाहिये ।
सद्धर्म-ग्रन्थों का सदा स्वाध्याय करना चाहिये,
निष्पक्ष या निःस्वार्थ बनकर न्याय करना चाहिये ॥१९॥

वर्णाश्रमों की पालना करना कराना चाहिये,
जैसे बनें तैसे चपल मन को हराना चाहिये ।
सम्पन्नता से युक्त सुहृदय-शुद्ध बनना चाहिये,
उन्माद या आलस्य तजकर बुद्ध बनना चाहिये ॥२०॥

धर्म्मज्ञ पुरुषों के कथन पर ध्यान देना चाहिये,
दुर्गुण हटाकर सद्गुणों को मान देना चाहिये ।
उत्साह को हृद्धाम में सु-स्थान देना चाहिये,
सुनकर समझकर पात्र को ही दान देना चाहिये ॥२१॥

प्रार्थी जनों की प्रार्थना स-स्नेह सुनना चाहिये,
सद्बुद्धि-द्वारा हर विषय का सार चुनना चाहिये ।
पर-दोष लखने से प्रथम निज-दोष लखना चाहिये,
सानन्द रहने के लिये संतोष रखना चाहिये ॥२२॥
पर-सम्पदा को मृत्तिका या धूल गुनना चाहिये,
वैराग्य सुख का राग दुख का मूल गुनना चाहिये ।
सुख-प्राप्ति के हित दूसरों से दुख न रोना चाहिये,
मिलकर परस्पर अभ्युदय का बीज बोना चाहिये ॥२३॥

आत्मानुभव की घोषणा सर्वत्र करना चाहिये,
चुन चुन विशद धार्मिक विषय एकत्र करना चाहिये।
सुविचार रूपी रत्न अपने पास रखना चाहिये,
विश्वस्त जन की बात का विश्वास रखना चाहिये ॥२४॥

मिथ्यात्व-मिथ्याचार मन से दूर करना चाहिये,
उद्दण्ड की उद्दण्डता चकचूर करना चाहिये।
पैरों तले लखते हुये प्रस्थान करना चाहिये,
पाखण्ड वा छल छद्म का अवसान करना चाहिये ॥२५॥

सेवा बड़ों की प्रेम से सविधान करना चाहिये,
नर-रत्न को पहिचान कर सन्मान करना चाहिये।
धर्मार्थ अपने प्राण तक सानन्द देना चाहिये,
सुख-नीर बरसा लोक को आनन्द देना चाहिये ॥२६॥

आनन्द एवं शान्ति से जीवन बिताना चाहिये,
स्वाधीन रह कर चैन की बंशी बजाना चाहिये।
निज आय में कुछ न कुछ प्रति दिन बचाना चाहिये,
अपनी कमाई ही सदा खाना खिलाना चाहिये ॥२७॥

साफल्यता के अर्थ फिर २ यत्न करना चाहिये,
यदि यत्न निष्फल हों सभी तो धैर्य धरना चाहिये।
उद्दण्ड पुरुषों की तरह भ्रमते न फिरना चाहिये,
सूस्थान होकर के कभी वश भर न गिरना चाहिये ॥२८॥

निःसार बातों में न पड़ कर सार गहना चाहिये,
संसार में जलजातवत् निर्लिप्त रहना चाहिये।
स्वार्थी जनों के साथ रहना छोड़ देना चाहिये,
निर्लोभ होकर लोभ का मंद तोड़ देना चाहिये ॥२९॥

कटुता, कुटिलता, रूक्षता का त्याग करना चाहिये,
निष्पाप बनने के लिये जप-योग करना चाहिये।
निज शक्ति भर निज वंश का गौरव बढ़ाना चाहिये,
अवनत-पतित निज जाति को उन्नत बनाना चाहिये ॥३०॥

सम्मान्य पुरुषों का सदा सत्कार करना चाहिये,
धर्म्मज्ञ बनकर धर्म का उद्धार करना चाहिये।
कुत्ते समान कभी किसी का मुख न तकना चाहिये,
हरि-नाम रस का पान कर-कर खूब छकना चाहिये ॥३१॥

हित चाहने के अर्थ ओछी बान तजना चाहिये,
संसार नश्वर जानकर अभिमान तजना चाहिये।
शरणागतों का सब तरह से मान रखना चाहिये,
आजन्म कर्मा कर्म की पहिचान रखना चाहिये ॥३२॥

गिरते हुए के हाथ में निज हाथ देना चाहिये,
निःशक्त-निर्धन बान्धवों का साथ देना चाहिये।
जिसमें सफलता प्राप्त हो वह काम करना चाहिये,
अविराम श्रम करके उचित विश्राम करना चाहिये ॥३३॥

अपने विरोधी को कभी क्रोधित न करना चाहिये,
बलवान होकर दीन को क्षोभित न करना चाहिये।
अपने बड़ों के सामने खिलखिल न हँसना चाहिये,
जंजालियों के जाल में भ्रम वश न फँसना चाहिये ॥३४॥

शिक्षा तरंगों में सदा साह्लाद बहना चाहिये,
निष्काम होकर भी कभी बैठे न रहना चाहिये।
कामाग्नि में पड़ कर चने के सम न भुनना चाहिये,
पर नारि को निज जन्मदात्री तुल्य गुनना चाहिये ॥३५॥

अत्यन्त उत्तम सत्य सुख का मार्ग जचना चाहिये,
संसार के हित के लिये सद्ग्रन्थ रचना चाहिये।
मत्सर अहङ्कारादि का संहार करना चाहिये,
सुख शान्तिदायक नीति का विस्तार करना चाहिये॥३६॥
निज इन्द्रियों पर सर्वदा अधिकार रखना चाहिये,
मन और मन की वृत्तियां अविकार रखना चाहिये।
संसार की निःसारता का ध्यान रखना चाहिये,
समुचित प्रकार हितानहित का ज्ञान रखना चाहिये॥३७॥
कपटी जनों की पोल समुचित खोल देना चाहिये,
कृतकार्य होकर धर्म्म की जय बोल देना चाहिये।
खल क्रूर को निज शीश पर चढ़ने न देना चाहिये,
बढ़ता हुआ विग्रह कभी बढ़ने न देना चाहिये॥३८॥
निज आयु को क्षण भी वृथा जाने न देना चाहिये,
अपमान होने का समय आने न देना चाहिये।
विश्वेश को ही विश्वभर में व्याप्त लखना चाहिये,
हैं प्राण सबके एक से यह याद रखना चाहिये॥३९॥
हरि ध्यान में सुध देह तक की भूल जाना चाहिये,
हरि द्रोहियों को शक्ति भर नीचा दिखाना चाहिये।
हरि का सुयश ही सर्वदा सुनना सुनाना चाहिये,
हरि ने किये उपकार जो जो नित्य ध्याना चाहिये॥४०॥

अचलराम भजन प्रकाश के कुछ चुने हुये भजन।
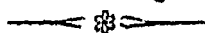
(राग-ध्वनि ईमन मांझ, अथवा देश अथवा कव्वाली)

प्रभु की महिमा सब गाय थके, नहीं पावत कोई जन पारा है।
मम एक गिरा क्या गान करे, मुख सहस्र जिह्वा कहि हारा है ॥टेक॥
ब्रह्मादिक वेद बनाय थके, विष्णु धर धर अवतारा है।
शिव शेष गणेश धनेश थके, सब कहत अपार अपारा है ॥१॥प्रभु०
मुनि व्यास वसिष्ठ कवि वाल्मीकि, किये कोटी ग्रन्थ हजारा है।
नारद शारद सनकादि थके, तब और कौन विचारा है ॥२॥प्रभु०
इस जग में संत अनंत हुये सब हरि भज जन्म सुधारा है।
गुन गान किये अपनी अपनी, निज बुद्धि के अनुसारा है ॥३॥प्रभु०
जिसको प्रभु शक्ति देवे जितनी, उतना गुण करत प्रचारा है।
अचलराम प्रभु शक्ति के विना, नहीं एकहि शब्द उचारा है ॥४॥प्रभु०

(राग-ध्वनि ईमन मांझ, अथवा देश अथवा कव्वाली)

यह ॐ अक्षर परब्रह्म सदा, सब नामों का सिरतारा है।
ॐकार बिना सिद्ध होत नहीं, तप योग यज्ञ आचारा है ॥टेक॥
यह सकल काम सिद्धि दाता, प्रभु ने निज नाम निकारा है।
ॐकार से निकले मंत्र सभी, गायत्री आदिक सारा है ॥१॥ यह ॐ
धर्म विद्या चतुर्दश हैं जग में, सब ॐकार विस्तारा है।
वर्ण मात्र सब ॐ से निकले, ॐ करके होत उचारा है ॥२॥ यह ॐ
ॐकार सकल घट व्यापक है, सब नाम रूप आधारा है।
इम जान भजे मन माहिं मुनि, तिने प्राणों से अति प्यारा है ॥३॥ यह ॐ
ॐ मंत्र का है अधिकार उसे, जिसने ब्रह्मचर्य धारा है।
अचलराम तभी कल्याण होय, ये वेद वेदान्त पुकारा है ॥४॥ यह ॐ

(राग गज़ल काफ़ी कव्वाली धुन ताल ३)

सदा सत्संग की महिमा, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥टेक॥
जगत को जलता देख करके, प्रभु ने ज्ञान घटा भेजी।
बुझावे ताप त्रिय को मुबारिक हो मुबारिक हो ॥ १ ॥ स०
शोक संशय सब भागे, गरजना संतों की सुन के।
वर्षावे ज्ञान अमृत को, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥ २ ॥ स०
बिना जप योग यज्ञ तप के, सतसंग भव तारन गंगा ॥
समागम संतों का ऐसा, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥३॥ स०
भव सिंधु पार होने को, जहाज सतसंग है जग में।
खेवैया महात्मा साधु, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥४॥ स०
हज़ारों खल कुटिल पामर, सतसंग से तिर गये पापी।
अचलराम फिर भी तिरते जात, मुबारिक हो मुबारिक हो॥५॥स०

राग ग़ज़ल ताल-कव्वाली अथवा गजल ज़िला झंझोटी

इतना तो करले बन्दे, दुनियां के बीच आ के।
न बांध पाप गठरी, लेजा खरी कमाके ॥टेक॥
नेकी वो दर किनारे, मत बांध पाप भारे।
यमदूत आगे मारे, न जा तू धोखा खाके ॥१॥ इत०
शुभ कर्म को विचारी, पापों की पूँजी डारी।
आगें मंजिल करारी, रखना तू पांव जमाके ॥२॥ इत०
हुसियार होके चलना, एक दिन तुझको चलना।
फिर होय ना सँभलना जब काल सिर पै ताके ॥३॥ इत०
घर माल मुलक खजाने, कोई न संग जाने।
अचलराम याहीं रह जाने, सुनले तू दिल लगाके ॥४॥ इत०

(राग-गजल ताल-कव्वाली अथवा गजल जिला झंझोटी)

इतना तो करले बन्दे, इस भरत खण्ड आके।
तप योग यज्ञ सतसंग को, करले तू मन लगाके ॥टेक॥
यदि स्वर्ग तुझको जाना, कर यज्ञ दान नाना।
यदि ब्रह्म में समाना, मिल जा दुई मिटा के ॥१॥ इत०
ऐसी रची विधाता है, स्वर्ग. मोक्ष दाता।
यह कर्म भूमी माता, लेजा यहां कमा के ॥२॥ इत०
अगरचे नहीं कमावे, मत गांठ की गमावे।
तेरा किया तू पावे, न जा भारत लजा के ॥३॥ इत०
इस देश की बड़ाई, देवों ने बहुत सराई।
अचलराम थोड़ी सुनाई, भारत का गीत गाके ॥४॥इत०

(राग-पद धुन-ताल कहरवा अथवा देश)

ब्रह्मचर्य्य को पालन करो नर नारी ॥ टेक ॥
धर्म अर्थ काम मोक्ष को साधन, मनुष्य शरीर को धारी।
अमूल्य शरीर की रक्षा खातिर, सदा रहो ब्रह्मचारी ॥ १ ॥ ब्रह्म०
शास्त्र अनुसार ग्राम्य धर्म बरतो, लंपट न हो व्यभिचारी।
तुच्छ सुख विषयों के लिये, उभे लोक न बिगारी ॥ २ ॥
ईश्वर कानून बखिलफ चलने से, आगे नरक में डारी।
बल बुद्धि आयु शरीर छीजे, लगे अनेक बीमारी ॥ ३ ॥
पशु पक्षी भी नियम से चलते, भूले मनुष्य अनारी।
अचलराम वे पशु के पशु हैं, जो न ब्रह्मचर्य्य धारी ॥ ४ ॥

(गजल ताल-दीपचन्दी)

कलि ने धर्म पलटा दिया, हाय गजब सितम गजब ॥ टेक ॥
जितने मनुष्य उतने मजब हाय कलि ने किया गजब,
धर्म को छिन्न भिन्न कर दिया ॥ १ ॥ हाय०
सब मनुष्यों में मत का भेद, परस्पर मिले न कोई अभेद,
सनातन धर्म भुला दिया ॥ २ ॥ हाय०
एक दूसरे की काटे बात, निन्दा करते दिन अरु रात,
ईर्षा द्वेष बढ़ा दिया ॥ ३ ॥ हाय०
अचलराम वेदोक्त धर्म, कलि छोड़ा ये सारे कर्म,
पाखण्ड जाल फैला दिया ॥ ४ ॥ हाय०

(राग-कान्हड़ा वा कालिंगड़ा)

जिसे भरोसो नहीं राम को, वो नर नहीं एक छदाम को ॥ टेक ॥
अखिल विश्व का नाथ छोड़ के, याचत फिरे गुलाम को ॥१॥ जिसे०
परमधाम मोक्ष त्याग कर, यत्न करे धन धाम को ॥२॥
राम नाम विसराय चिंतामणि, नाम जपे किसी आन को ॥३॥
अचलराम हरि विमुख होंय, वह कहिं न पावे विश्राम को ॥४॥

(राग कान्हड़ा वा कालिंगड़ा)

जिसे लागो शब्द गुरु ज्ञान को, वह नहीं चाहता ऐश आराम को ॥टेक
ऐस आराम छोड़ दिये जिसने, छाड़ा सकल धन धाम को ॥१॥ जिसे०
सुख दुख हर्ष शोक जिन छोड़ा, छोड़ मान अपमान को ॥२॥ जिसे०
देह यात्रा प्रारब्ध पर छोड़ी, पास न रखे फूटी बदाम को ॥३॥ जिसे०
भूखा रहना कबूल जिसको, खावे न माल हराम को ॥४॥ जिसे०
अचलराम निष्काम होकर, भजे निज आत्म राम को ॥५॥ जिसे०

(राग गजल काफी-कव्वाली धुन ताल ३)

चढ़े मन घोड़े पे कोई, चढ़ाकी हो तो ऐसा हो।
फिरावे ज्ञान चक्कर में फिराकी हो तो ऐसा हो ॥ टेक ॥
अभ्यास की लगाम लगा करके, कसे वैराग की काठी।
गुरुगम चाबुक ले मारे, दौड़ाकी हो तो ऐसा हो ॥ १ ॥ चढ़े०
समल कर बैठना यारो, नफ्स शैतान है घोड़ा।
गिरा दिये पीर औलियों को, कुदाकी हो तो ऐसा हो ॥ २ ॥ चढ़े०
बिचारी दुनियाँ किस गिन्ती में, हजारों सवार पटक मारे।
बड़ा बदमाश है घोड़ा, तुफानी हो तो ऐसा हो ॥ ३ ॥ चढ़े०
लगाम टुक ढीली नहीं छोड़े, चढ़ा रहै मन घोड़े ऊपर।
अचलराम असवार वो ही पक्का, खिलाड़ी हो तो ऐसा हो ॥४॥ चढ़े०

(राग-हुजाज ताल दीपचन्दी)

मुझको क्या ढूंढे बन बन में, मैं तो खेल रहा हरफन में ॥ टेक ॥
आकाश वायु तेज जल पृथ्वी, इन पाँचों भूतन में।
पिण्ड ब्रह्माण्ड में व्याप रहा हूँ, चौदह लोक भुवन में ॥ १ ॥
मुझको०
सूर्य चन्द्रमा बिजली तारे, मेरा प्रकाश है इनमें।
सारे जगत का करूँ उजारा, मेरा प्रकाश सब जन में ॥ २ ॥
मुझको०
सब में पूर्ण एक बराबर, पहाड़ और राई तिल में।
कमती जादा नहीं किसी में, एक सार हूँ सब में ॥ ३ ॥
मुझको०
रोम रोम रग रग में ईश्वर, इन्द्रिय प्राण तन मन में।
अचलराम सत्गुरु कृपा बिन, नहीं आता लखन में ॥ ४ ॥
मुझको०

(राग-हुजाज ताल दीपचन्दी)

जिसने जाना ब्रह्म को तन में, वो अलमस्त रहे नित मनमें ॥टेक॥
पूर्ण ब्रह्म पिछाने पीछे, घर में रहो चाहे वन में।
उसको दोनों एक बराबर, फक्त रहे चाहे जन में ॥ १ ॥ जिसने०
बोले चाले बैठे ऊठे, रहे वो अपनी धुन में।
पार ब्रह्म से तार न तोड़े, हर दम रहे लगन में ॥ २ ॥ जिसने०
जिसकी डोरी लगी ब्रह्म से, वो न आवे बंधन में।
जल कमलवत् रहे जगत् में, फसे नहीं फंदन में ॥ ३ ॥ जिसने०
अवस्था त्रिय का साक्षी ज्ञानी, सुषुप्ति जाग्रत सुपन में।
अचलराम तुरिये है सोई, समझ रहे मगन में ॥ ४ ॥ जिसने०

(राग-गजल परज-ताल ३ अथवा गजल कव्वाली)

दान करने का मजा, दुनियां में जिसको आगया।
जो कुछ उसके हात लगा, धन माल को लुटा गया ॥टेक॥
आया मजा हरिश्चन्द्र को, दान सर्वस्व कर दिया।
फिर भी कसती देख के, चाण्डाल के घर बिक गया ॥१॥ दान०
बलि को आया मजा, वसुधा बावन को सोंपदी।
तीन चरणों में हुई कम, पीठ को नपवा गया ॥२॥ दान०
रंति देव राजा हुआ, दानी बड़ा संसार में।
राज पाट सब दान कर, जंगल के बीच चला गया ॥३॥ दान०
छपनकरोड़ लुटा दिया, इक दम महता नरसी ने।
फक्त एक माला रखी, हरि के भजन में लग गया ॥४॥ दान०
त्रिलोकचन्द्र साहुकार ने, दान का लूटा मजा।
निर अभिमान सेवा करी संतों को सर्व खिला गया ॥५॥ दान०
अचलराम कहाँ तक कहें, दानी हजारों हो गये।
जिसने दान न किया, वह खाली हाथ चला गया ॥६॥ दान०

(राग-ग़ज़ल परज ताल ३ अथवा कव्वाली)

सत्संग करने का मजा दुनियाँ में जिसको आगया।
कुसंग वो करता नहीं जिसे ज्ञान का रंग लग गया ॥टेक॥
उसको पसंद आते नहीं, नाटक तमासे देखने।
घुड़दौड़ पोलो खेल सब, दिल से वो सब बिसरा गया ॥१॥ सत्०
गांजा भांग अफ़ीम के, नज़ीक कभी जाना नहीं।
सुलफे वो चंडू सब नशों को, तिलांजलि वो दे गया ॥२॥ सत्०
फिजूल वक्त खोता नहीं, सिवा एक सत्संग के।
सतरंज चौपड़ तास को, सबको तुरी बता गया ॥३॥ सत्०
जुआ मांस शराब वेश्या, चोरी पर धन पर नार से।
इन सप्त व्यसनों से बचा, सत्संग का फल पा गया ॥४॥ सत्०
अचलराम को आया मजा, सत्संग के प्रताप से।
दुर्व्यसन सारे छोड़ के, पर ब्रह्म में जा मिल गया ॥५॥ सत्०

(राग-गज़ल परज ताल ३ अथवा कव्वाली)

तू सबका सरदार है, फिर गुलाम कैसे हो रहा।
भूल कर अपने को प्यारे, पेट खातिर रो रहा ॥टेक॥
तू सबका सिरताज है, महाराज सब संसार का।
चैतन्यरूप बिसराय के, इन्द्रियों के बश क्यूं होरहा ॥१॥तू०
फँस गया मोह जाल में, अब निकलना मुश्किल हुआ।
कुटुम्ब की चिन्ता में निशि दिन, जिन्दगी क्यूं खो रहा ॥२॥तू०
तृष्णा चुड़ेलन लग गई, भटका रही धन के लिये।
दीनों का दीन बना दिया, पराधीन तब तू हो रहा ॥३॥तू०
दीन गुलामी छोड़ सब, पहिचान ले निज रूप को।
अचलराम तू ब्रह्म है, ग़फलत में कैसे सो रहा ॥४॥तू०

(१ राग-दादरा ताल ३)

ज्ञान बिना यारो मिटे न रोना ॥ टेक ॥

अगरचे मिले तुमे सकल विभूती,
ज्ञान बिना सब थाट अलोना ॥ १ ॥ ज्ञान०
काम धेनु चिंतामणि पारस,
मिले सारी पृथ्वी भर सोना ॥ २ ॥ ज्ञान०
अगर त्रिलोकी मिले तो क्या हो,
आखिर तो सब से हाथ धोना ॥ ३ ॥ ज्ञान०
अचलराम निश्चय करि जानो,
ज्ञान बिना मोक्ष हुआ नहीं होना ॥ ४ ॥ ज्ञान०

(राग-दादरा अथवा कहरवा)

क्या कहिये यार अब कहते बनेना ॥ टेक ॥

इश्क की चोट लगी मेरे दिल को,
ताते उम्र अब समल सके ना ॥ १ ॥ क्या०
जख्मी हुआ दिल तड़फ रहा है,
रात दिवस अब चैन परे ना ॥ २ ॥ क्या०
तन की पीड़ को सब कोई जाने,
दिल का दरद कोई जान सके ना ॥ ३ ॥ क्या०
अचलराम जिसे लगी वोही जाने,
और कोई पहचान सके ना ॥ ४ ॥ क्या०

(राग-देश)

कहे जैसा चले तो लेऊ वारणारे,
कहना सुगम कठिन अति धारणारे ॥टेक॥

दिखावटी रह ब्रह्मचारी, छुपके कर्म करे व्यभिचारी,
ऐसे नर नारी ऊपर धूल डारणारे ॥१॥ कहे०

आशा तृष्णा मन में लागी, ऊपर स्वांग धरा वैरागी,
चेला चेली कर धन को वटोरणारे ॥२॥ कहे०

साधु संत संन्यासी हो कोई, धन दारा राखे जो दोई,
होय उभय भ्रष्ट वेद कहे पुकारणारे ॥३॥ कहे०

ज्ञान कथे दुनियां प्रमोदे, अपना जन्म विषयों में खोदे,
अचलराम बद्ध ज्ञानी धर्म विगारणारे ॥४॥ कहे०

इति श्री स्वामी अचलराम विरचित हिन्दू धर्म रहस्य समाप्त।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।